ऋषि दयानन्द

के

पत्र और विज्ञापन

प्रथम भाग

सम्पादक

भगवद्दत्त।

ओ३म्

ऋषि दयानन्द

के

पत्र और विज्ञापन।

प्रथम भाग

—:o:—

लेखक वा प्रकाशक
भगवद्दत्त

पृष्ठ १ से ५४ तक यूनियन, २५ से ३२ तक पंजाबी, और शेष सब बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में पं० हर भगवान् मैनेजर के प्रबन्ध से छपा।

कार्त्तिक विक्रम सम्वत् १९७५—आर्य्य संवत् १९६०८५३०१८

प्रथमवार १०००

अक्तूबर १९१८ दयानन्दाब्द ३५

मूल्य ॥)

कुछ पत्रों के सम्बन्ध में ।

यह पत्र संख्या में बहुत अधिक हैं । अतः कई भागों में निकलेंगे । पुस्तक की भूमिका भी अन्त में ही लिखी जायगी । सम्प्रति तो आर्य्यजनता से यही निवेदन है कि वह मुझे नये पत्रों के संग्रह करने में सहायता दे । आर्य्यसमाज के कई महान् व्यक्ति और उत्साही महाशय मेरी बहुत सहायता कर रहे हैं । उन सब के परिश्रम ही का फल है कि मैं इतने पत्र संग्रह कर चुका हूं । उन सब का शुभ नाम धन्यवाद पूर्वक भूमिका के अन्त में आ ही जायगा । परन्तु मैं चाहता हूं कि ऐसे सज्जनों की संख्या अधिक हो । पत्रान्वेषणार्थ मेरे पत्रों का कई आर्य्य पुरुषों ने तो तत्काल उत्तर दिया है परन्तु अनेक लोग चुप भी रहे हैं । वे समझते हैं कि काम कदाचित् मेरा अपना है । यह उनकी भूल है । ऋषि के एक २ अक्षर का सुरक्षित करना सब आर्य्यों का विशेष कर्त्तव्य है । यह ऋषिऋण से उऋण होने का एक प्रकार है । मुझे पूरा पता है कि अनेक लोगों के घर में ऋषि के कई शिक्षाप्रद पत्र विद्यमान् हैं । उनको निःसंकोच उन्हें प्रकाशित करवा देना चाहिये । आवश्यक पत्रों की प्रतिकृतियां भी मैं साथ दूंगा । पाठक ऐसी ही एक प्रतिकृति इस भाग के आरम्भ में पाएंगे । यह पत्र ऋषि के अपने हाथ का लिखा हुआ है । इसके रखने से जहां अन्य बातों का प्रकाश होगा वहां ऋषि का हस्ताक्षरयुक्त लेख प्रत्येक आर्य्य घर में पहुंच जायगा । जितनी शीघ्रता से इस भाग का प्रचार होगा उतने अधिक उत्साह से आगामी काम चलेगा । इस भाग में बहुत से पूर्व प्रकाशित पत्र भी आ गये हैं, और संग्रह में यह आवश्यक ही था, पर आगे नवीन पत्रों की संख्या अधिक होगी। काग़ज़ आदि के अत्यन्त महंगा होने पर भी पुस्तक का मूल्य यथासम्भव न्यून रखा गया है । परन्तु प्रतिकृति के तय्यार कराने में व्यय अधिक आया था अतः इतना रखना पड़ा ।

ऋषि के पत्रों के साथ २ मैं उनकी फोटो भी एकत्र कर रहा हूं । पांच छः स्थलों पर उनकी फोटो ली गई थी । उनमें से कई एक तो छप चुकी हैं । एक सर्वथा नया चित्र मुझे राय बहादुर संसारचन्द्रजी से मिला है । दृश्य उसका अत्यन्त रोचक है । महाराज भूमि पर आसन लगाए विराजमान हैं । सामने पुस्तक पड़ी है । उसका पाठ हो रहा है, इत्यादि । ऐसे चित्रों का संग्रह करना मैं आवश्यक समझता हूं । अतएव यदि किसी सज्जन के पास ऋषि का यथार्थ फोटो हो तो वह मुझे सूचित करें । अमरीका वाला चित्र भी उन्हीं रंगों में छपवाया जायगा । अगले भाग के सम्बन्ध में यह कहना शेष है कि उसमें लखनऊ के पं० रामाधार वाजपेई, दानापुर के बाबू माधोलाल, सुप्रसिद्ध राय बहादुर श्रीमूलराजजी एम० ए० इत्यादि के अनेक पत्र होंगे । इत्योम्

स्थान लाहौर ।
कार्त्तिक व० ५ वीर दयानन्दाब्द ३५

भगवद्दत्त

॥ ओ३म् ॥

❋ ऋषि दयानन्द के एक हस्त लिखित पत्र का प्रतिकृति ❋

चौधरी ठाकुर जालिमसिंहजी आनन्दित रहो
मेरा विचार जयपुर में १५ दिनों तक ठहरने का है पश्चात् अजमेर जाना होगा
यहां के मनुष्यों का सुधार असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है व
तत्काल में सुधरेंगे तो सुधरेंगे नहीं तो अधिक बिगड़ जायेंगे
अब देखिये कि जैसी भी मुझसे इनकी इच्छा थी वैसा ही १५) रुपये मे
माचारी और एक रुपये पे हाथ खर्च और खाने में २) रु० से कम नहीं
लगते इसने एक महिना कि जब तक उसका मासिक पूरा नहीं आ
था तब तक काम भी अच्छा करता था अब ठीक नहीं करता ये लो
ग भीतर के मैले और ऊपर के शुद्ध दिखलाई देते हैं अच्छा जब
तक बनेगा तब [illegible] होगा बहुत अपराध करेगा तब निकाल
देना पड़ेगा देखिये मैंने इससे कहा था कि जो तेरा भाई रसोईदार
सके तो लाना नहीं आप [illegible] के मार्फत रसोइया (जाने को कहा था
परन्तु लोभ का मारा अपने महामूर्ख जड़बुद्धि को ले आया आ
ज इसको रसोई बनाते १५ दिन हो चुके कोई भी न आया और न आ
ने की आशा है आज [illegible] भी इसने रसोई [illegible] आपकी जान
[illegible] जो मैं लिखता हूं जो कोई सोलह [illegible] और धर्मात्मा आपकी जान
में हो तो यहां जयपुर में भेज दीजिये और जो वहां न मिल स
कें तो लिखिये फिर यहां से तजवीज हो जायगा सब [illegible] से मेरा न
मस्ते कह दीजियेगा। मि० चै० शु० ८ गुरुवार सं० १९३८

दयानन्दसरस्वती
(जयपुर)

अमृत प्रैस अमृतधारा भवन लाहौर

[१] बाबू विश्वेश्वरसिंहजी आनन्दित रहो [१]

बड़े आश्चर्य की बात है कि तुमने वहां जाके एक भी पत्र न भेजा अब जो २ लिखने योग्य हों सब समाचार लिख भेजना सुना है कि बाबू केशवचन्द्रसेनजी आज कल वहां हैं तुम आनन्द में होंगे हम बहुत आनन्द में हैं एक बात तुम को आवश्यक जान के लिखी जाती है। जो वहां ब्राह्मी ओषधि मिलती हो तो उसको ले सुखा पारसल कर डाक में भेज दो उसका महसूल यहां देदिया जाएगा उस पर पता यह लिखो। (हरि पण्डित जी कामदार महाराजे विजयनगराधिपति बनारस भेलूपुरा)। अब छापा का काम चलने लगा है हम यहां मेरठ में बीस वा पच्चीस दिन रहेंगे। जब तुम प्रयाग को आओ तब ब्राह्मी ओषधि बहुत सी लेते आना। जो आज कल न हो तो भादों और आश्विन में बहुत होती है वहां के मनुष्यों से पूछ के निश्चय कर लेना वहां रईस उसको जानते होंगे। सब से मेरा नमस्ते कह देना

सं० १९३७ मि० आ० शु० ११ रविवार। [दयानन्द सरस्वती]

ओ३म्

[२] बाबू विश्वेश्वरसिंहजी आनन्दित रहो [२]

निम्न लिखित वर्तमान पंडित बालमुकुन्द तथा देवीप्रसादको भी सुना कर कार्य्य कीजिये हमको मुन्शी समर्थदानने लिखा था कि बाहरका काम भी छपना चाहिये उस पर हमने ऐसी अनुमति दी कि हमारे काम में हर्ज होगी तो हम उसी वक्त बाहरका काम बन्द कर देंगे अब देखो कि एक सप्ताहमें तो प्रयाग समाचार छपता है और मासिक ये दो ले लिये और आठ फारम वेद भाष्यका छपता है और यह सब मिल कर महीने में १० फारम तथा १२ यह होजाते होंगे इस हिसाब से २० तो होगये अब कहो सत्यार्थ प्रकाशादि कैसे छपे इस लिये हम चाहते हैं कि बाहर का काम जब तक दूसरा प्रेस न लिया जाय तब तक न छपाया जाय क्योंकि यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र प्रचार के लिए किया गया रोजगार के लिये नहीं यद्यपि समर्थदान की मनसा छापेखाने की उन्नति करने पर हो कि बाहर के काम से कुछ सहाय होगा तथापि अपने निज पुस्तकों के छपने में हानि कारक को हम नहीं छपवा सकते इस लिये मुन्शी समर्थदान को हमने लिखा है और तुम भी उनको समझा दो कि नोटिस देदें। पंडित सुन्दरलाल जी की भी यही सम्मति होगी अर्थात् बाहर का काम बिलकुल बन्द किया जाय कारण कि समाचार चाहे

जहां छपेगा उनकी कुछ हानि नहीं होगी और अपने पुस्तक अन्यत्र नहीं छप सकते और हम ने इस से कहा था जब इसी प्रतिज्ञा पर कहा था चाहे चिट्ठी भी हमारी इसी के पास होगी भले ही देख लो यदि तुम प्रयाग समाचार को जो रात में व अनध्याय में तथा सत्य शास्त्रों के छपने का समय बचा कर अन्य समय में कि जिस में इन शास्त्रों के छपने में विघ्न न हो लिखा था सो अब समर्थदान को कह दो कि १५ दिन पहिले नोटिस देदो प्रयाग समाचार वाले को और महीने पहिले देशहितैषी आदि को और बाहर की छपाई किसी की मत लो जब बाहर की छपाई लेने का समय आवेगा तब हमहीं कह देंगे अब बाहर का काम जो कुछ आवे तो लेलो एक तो प्रेस है उस में अपना छपना बहुत है इस से बाहर की छपाई लेनी अवश्य नहीं और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना ।

और तुम तीन और समर्थदान मिल कर एक सभा करो कि जिस से कोई व्यवस्था नई करनी वा पुरानी हटानी हो तो विचार करके हम को और पंडित जी को लिखा करो और जो मुन्शी समर्थदान ने मान्यपत्र के साथ छापा है सो अच्छा है क्योंकि इतने लेखके विना मान्यपत्र का अर्थ लोगों के समझ में नहीं आता इतना लेख अवश्य होना था ।

मि० वै० शु० ४ सं० १९४० [हस्ताक्षर] [दयानन्दसरस्वती] साहपुरा

ओ३म्

[३] बाबू विश्वेश्वर सिंह जी आनन्दित रहो [३]

विदित हो कि हम कई बार मुन्शी समर्थदान को लिख चुके हैं कि बाहर का छापना बिलकुल बन्द करदो परन्तु उसने अब तक बन्द नहीं किया इस लिये तुम उसको समझादो कि बाहर का काम कभी न छापे यदि बन्द न करेगा तो हम उस पर दंड कर देंगे इस प्रकार की चिट्ठी परसों हम ने उस को लिखदी और उस को दंड भरना पड़ेगा इस को बाहर का काम छापने का उस को क्या प्रयोजन है और तुम समर्थदान को सहायता देते हो इस में हमारी बड़ी प्रसन्नता है और तुम पिन्शिन कब लोगे जब तुम पिन्शिन लोगे तब तुम्हारी नौकरी शीघ्र वैदिक यंत्रालय में होजाएगी और सब यंत्रालय की भी खबरदारी रक्खा करो और लिखने के योग्य समाचार हम को तत्काल

लिखा करो और कितनी हानि निघंटु उणादि गण और धातुपाठ सत्यार्थप्रकाश के छपने से बन्द होरहा है अब शीघ्र तुम पिन्शिन लो और शीघ्र यंत्रालय में आजाओ जब तुम यंत्रालय में आकर काम करोगे तभी काम ठीक बनेगा और देखलो कि मुंबई (से टाइप) मंगवाने में समर्थदान का हठ था नहीं तो पंडित जी ने कहा था कि हम कलकत्ते से लेते आवेंगे इसने कहा कि नहीं मुंबई का मंगावेंगे अब नही मुंबई का आया न कलकत्ते का बहुत हानि हो रही है और मुंबई से मंगाना भी नहीं है २५०) रु० ऐसे आदमी के पास भेजा है कि जिसका ठौर न ठिकाना इन सब बातों का उत्तर शीघ्र भेज दो यहां बहुत आनन्द हो रहा है विशेष समाचार आगे लिखा जायगा और तुम यहां का समाचार सदा लिखा करो और यह समर्थदान अपनी चिट्ठी में कभी तुमारा नमस्ते भी नहीं लिखता यह क्या बात है और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना—

मिती ज्ये० सु० २ सं० १९४० गुरुवार जोधपुर मारवाड़।

(हस्ताक्षर) (दयानन्द सरस्वती)

---

[४] (५) इस पत्र के पहले चार पृष्ठ लुप्त हैं [४]

खातादेना और मुझ को दृढ़ निश्चय है कि मुन्शी समर्थदान और तुम दोनों मिल कर यंत्रालय का काम अच्छी प्रकार रखोगे और सब से मेरा आशीर्वाद कह देना (अलमति विस्तरेण बुद्धि मद्वर्येषु) और पंडित सुन्दरलाल जी की भी सम्मति नये काम में सदा लिया करोगे जैसी कि मेरी और यह दोनों पत्र तुम्हारे पास भेजते हैं जोकि शाहपुरे की है किसी समाचार में छपवा देन।

मि० ज्ये० सु० १२ सं० १९४० जोधपुर मारवाड़ (दयानन्दसरस्वती)

---

(५) ओ३म् (५)

बाबू विश्वेश्वर सिंह जी आनन्दित रहो उस बात का स्मरण होगा कि जो तुमने काशी में मुझ से कहा था कि आप यंत्रालय कीजिये दो एक वर्ष में पेंशन लेलूंगा पश्चात् वैदिक यंत्रालय का ही काम करूंगा क्योंकि यह आर्यावर्त देश भरका उपकार है अब भी वही निश्चय है वा कोई दूसरा हो गया है प्रयाग समाचार छपना बंद हो गया था नहीं क्योंकि दो सप्ताह की प्रतिज्ञा थी

कभी की होचुकी है बन्द कर ही दिया होगा टेप आने की अवधी हो चुकी वा नहीं अब कब तक आवेगा और हमें आज मुन्शी समर्थदान जी को भी लिखा है कि जिन अक्षरों में भाषा छपती है कलकत्ते के ६ टेप बहुत अच्छे हैं यदि वे भी कुछ मंगवाये जांय तो ठीक है वा नहीं ? और वहां किसी वकील से पूछ निश्चय कर लिखना कि मुन्शी बख्तावर सिंह पर नालिश की जाय प्रयाग में हो सकती है वा नहीं क्योंकि दो ही ठिकाने हो सकती है एक जहां बात हुई हो वहां और दूसरे जहां मुद्दई होवे जब वह बात हुई थी तब यंत्रालय काशी में था अब प्रयाग में है सो किसी अच्छे वकील से पूछ के लिखो और यह भी पूछ के लिखो कि नालिश फौजदारी में करना चाहिये वा दीवानी में मेरी समझ में और अन्य वकीलों की भी सम्मति है कि दीवानी में करना अच्छा है सब से मेरा आशीर्वाद कह देना—

जोधपुरराज मारवाड़ (दयानन्द सरस्वती)

इन सब बातों का प्रत्युत्तर लिखो ॥ आषा० सु० १२ सं० १९४० ।

ओ३म्

[६] बाबूविशश्वर सिंह जी आनन्दित रहो— [६]

बख्तावर सिंह के समय के रजिस्टर सब प्रयाग में हैं और चिट्ठी पत्र तथा हिसाब किताब कुछ मेरठ में भी है यदि अब तक न आया हो तो मंत्री आर्य समाज मेरठ बाबू आनन्दीलाल से मंगा कर वकीलों को दिखला देओ और प्रबंध शीघ्र करो—कलकत्ते के टेप कितने मंगाना चाहते हो और उसके कितने रुपये मनके दाम लगे थे इस विषय का सब हाल लिखो यदि मुंबई के टेपों से कार्य निकल सके तो फिर मंगाना कुछ आवश्यक नहीं और यह जो सभा का प्रबन्ध हुआ है सो बहुत अच्छा है एक को अधिकार देने में खराबी होती है और एक को अधिकार न देना। इस सभा में तुम लोग तथा सुन्दर लाल जी और हमारी भी पूर्ण सम्मति है इस लिये जो प्रबन्ध इसका तुम विचारते हो वही हमने विचारा है क्योंकि स्वतंत्र अधिकार देने में हानि ही हानि होती है और लाभ कुछ भी नहीं होता और तुमने लिखा कि धनके कार्य में किसी को स्वतंत्रता न देनी चाहिये वह सच है क्योंकि धन के काम में स्वतंत्रता से लाखों आदमियों में से कोई ही रह सक्ता है और यहां धन का ही केवल काम नहीं

किन्तु पुस्तकों का ही बड़ा भारी माल है जैसे हरिश्चन्द्र ने और बख्तावरसिंह ने चोरी से वेद भाष्य के ग्राहक कर लिये थे और छपवाने में भी हम को प्रसिद्धि करता था १००० हजार और छपवाता था २०००) तथा १५०० डेढ़ हजार और बाहर का चोरी से छपवा लेना उस का हिसाब कुछ न देना यदि दिया तो हिसाब में लिया १०० सौ और लिखा २० बीस इत्यादि बहुत प्रकार के छापे खाने में काम रहते हैं दो मनुष्यों को जो तुम सभा में बढ़ाना चाहो हमारी ओरसे बढ़ादो और पंडित जी की भी सम्मति लेलो और तुम प्रसन्नता से यंत्रालय में रहो तुमारा घर है और मुन्शी समर्थदान ने भी हम को लिख भेजा है वह भी तुमारे रहने से राजी है। जो पिछला रुपया बाकी है उसका तगादा करना विचारा है सो अच्छी बात है-परन्तु मैं शोक करता हूं कि जिस काम में मुन्शी समर्थदान अकेले रहते थे तब वसूल और तगादा भी होता था और जब से पं० शिवदयाल और रामचन्द्र रक्खे हैं तो भी तगादा और वसूल अच्छा नहीं होता यह अपने देश का अभाग्य है क्योंकि जितने अधिक होंगे उतना विरोध करेंगे और काम ठीक २ नहीं करते इस लिये इन तीनों को समझा दो कि अपना २ काम प्रीति और उत्साह से करें विशेष कर पं० शिवदयाल और रामचन्द्र को समझाना समर्थदान तो समझा ही हुआ है इस कमेटी के विषय में कोई निन्दा लिखे हम कभी नहीं सुनेंगे। हां जो कुछ हमको लिखितव्य होगा सो पं० सुन्दरलाल जी को लिखा करेंगे(ऐसा विचार मत रक्खो कि इस प्रेस से मैं कुछ न लूं क्या घर के माल में से घर के आदमी यथोचित नहीं लेते (जो काम धार्मिक उत्तम मनुष्य से बनता है वह धन से कभी नहीं होता।)जो तुम से यंत्रालय की उन्नति होगी वह निश्चय है कि लाखों रुपये खर्च करतेभी न होगी क्योंकि सब पदार्थ संसार में सुलभ हैं परन्तु शुद्ध मनुष्य का मिलना दुर्लभ है क्या तुम इस द्रव्य को बुरा और अधर्मका समझते हो जो नहीं लेओ यह सब उत्तर लिखो बड़ों २ और छोटों २ का कुछ नियम नहीं है यह तो अपने आत्मा के साथ है। क्योंकि बड़े २ तो बिगड़ कर तेल के बड़े हो जायं और छोटे २ सुधर कर बड़े हो जाते हैं। अब बाकी का तगादा कर जहां तक हो सके धन इकट्ठा करो और पश्चात् २०००) का सामग्री मंगवाओ, यदि उस में कुछ न्यूनता होगी तो हम दे देंगे यदि यह सब प्रबन्ध हो तो पेन्शन ले कर यहीं तुम रहना और जो मासिक पाते हो वही यहां मिले और १०) रुपये वे भी लिये जायं तो उस में से प्रति मास बचाते २ बहुत सा धन हो जायगा और यह निश्चय

है कि जहां २ जिस २ की उन्नति हुई है वह सब सभा ही से हुई है। इस लिये इस की भी उन्नति सभा ही से होगी–इस से यह बहुत अच्छा प्रबन्ध है और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना यहां वर्षा बहुत हुई और हो रही है निश्चय है कि वहां भी हुई होगी।

मिति भाद्र सुदी २ संवत् १९४० (दयानन्द सरस्वती)

॥ जोधपुर राज मारवाड़ ॥

---

[७] ॥ ओ३म् ॥ [७]

बाबू विश्वेश्वर सिंह जी आनंदित रहो—तुमने लिखा सो ठीक है इस में चार समाज जो कि प्रयाग के निकट हैं उन से इस बात का नियम कराना चाहिये हां मेरठ समाज कुछ उन तीन समाजों से दूर है तथापि रेल से कुछ दूर नहीं एक फरुखाबाद दूसरा मेरठ तीसरा दानापूर और चौथा लखनऊ इन चार समाजों के मंत्रियों को इस हमारे पत्र की नकल के साथ लिख भेजो दो वर्ष में एक वार पारी आवेगी क्योंकि छः २ महीने के पश्चात् किसी चार समाजों में से जिसकी पारी हो वहां से धार्मिक उत्तम पुरुष आया करे वह अन्तरंग सभा की सम्मति से आवे और वह हिसाब में अच्छी तरह से समझता हो तथापि धार्मिक और देशोन्नति में प्रीति रखने वाला हो चाहें समाज धर्मार्थ वैदिक यन्त्रालय का कितना ही सहाय करे और वास्तव में समाजों ही के प्रताप से वैदिक यन्त्रालय बना है तथापि समाज से जो कोई पुरुष आवे उसके आने जाने और जब तक वहां रहे तबतक खाने पीने का खरच भी वैदिक यन्त्रालय से दिया जाय और वर्ष २ में वैदिक यन्त्रालय का आय व्यय और पुस्तकों का जमा खर्च भी एक छोटे से पुस्तकाकार में छप के स्वीकार पत्र के सब सभासदों और सब आर्य समाजों में भी भेजा जावे इस से बहुत अच्छी बात रहेगी–और जो कुछ हिसाब में गलती दीखे वह वैदिक यन्त्रालय की प्रबन्ध कर्तृ प्रयाग सभा को तद्द्वारा मुझको और पंडित सुन्दर लाल जी को और उन चार समाजों को विदित किया जाय उसका उचित प्रबन्ध करने के लिये प्रयाग की सभा को अपनी सम्मति पूर्वक मैं वा अन्य सब लिख भेजें और वह सभा यथावत् प्रबन्ध किया करे इस से निश्चय है कि प्रबन्ध अच्छे प्रकार चलेगा और मुन्शी समर्थदान के २७ सत्ताईस तारीख़ अगष्ट का उत्तर यही है कि

उन्होंने कापी मांगी है और भीमसेन के पत्र की नकल भेजी थी और कापी आज ही भेजते आज रविवार है रजिष्टरी नहीं होती इस लिये कल भेजेंगे।

मिति भाद्र सुदी १५ रविवार सम्बत् १६४०।

जोधपुर राज मारवाड़ (दयानन्द सरस्वती)

---

[८] ॥ ओ३म् ॥ [८]

मुन्शी समर्थदान को कह देना कि ५० मन्त्र की भाषा का बगडल भेजा सो पहुंच गया अब देखो ज्वालादत्त की वे समझ का नमुना हमने यह लिखा था कि जो भाषा बनाने का कागज दूसरे पृष्ठ पर ही और मन्त्र पदार्थ अन्वय भावार्थ दूसरे पर हो जब ऐसा हो तो भाषा बनाने में विलम्ब होता है क्योंकि हर वार पत्र उलटाने में देर होता है और विना पदार्थ देखे भाषा नहीं बन सकती इस लिये लिखा था कि उसी के सामने कि जिधर की ओर मन्त्र है उसी के सामने नीचे की ओर कागज चेप कर भाषा बनाने से शीघ्र बन सकती है। सो ज्वाला दत्त ने उलटा समझ कर (१६) सोलह मन्त्र की भाषा दो दो वार लिख दी यदि ऐसा न करता तो ८ दिन में ७० मन्त्र की भाषा आती। अब देखा जायगा कि अब के अठवारे में कितने मंत्र की भाषा भेजता है और समर्थदान ने लिखा है कि कुछ ज्वाला दत्त नई भाषा बनाता है यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हो तो ठीक है नहीं तो जो पोप लीला की भाषा बना कर वहां ही छपवादे और हम को मालूम न हो पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा तो क्या होगा हां अबतक तो इसने कुछ नहीं किया है परन्तु सम्भव है कि कुछ गड़ बड़ करे तो हो सकता है इस लिये जो कुछ वो बनावे उसको समर्थदान देख ले जैसा कि अब की भाषा में एक गोल माल शब्द (देवता) लिख दिया था सो वह हमारे दृष्टि गोचर होने से शुद्ध हो गई, यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि का काम है। इस लिये ऐसा न होना चाहिये और हम ने कई वार समर्थदान को लिखा है कि धातुपाठ गणपाठ उणादि गण निघण्टु वा सूचीपत्र छपना बाकी है सो तो नहीं छापते और वेद भाष्य २ करते हैं छापना वेद भाष्य का महिनों पर नहीं है किन्तु बारह अंक ग्राहकों के पास पहुंचने पर वर्ष माना जाता है, इस लिये उस में थोड़ा बहुत विलम्ब हो तो कुछ चिन्ता नहीं किन्तु धातु पाठ

आदि और सत्यार्थ प्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं चाहिये। सो जब लिखता है तबअब तो वेदभाष्य छपता हैं यह उत्तर देता है तुम भी ऐसी सम्मति उनको दो कि जिस में यह पुस्तक शीघ्र छपजाय अथर्ववेद भाष्य के टाइटल पेज पर किसी ग्राहक का रुपया नहीं लिखा सो क्या रुपया नहीं आया है या अन्यत्र कुछ है इन सब बातों का उत्तर समर्थ दान से पूछ कर शीघ्र भेजो॥

मि० आ० व० ६ शुक्रवारसम्वत् १९४० दयानन्दसरस्वती

जोधपुर मारवाड़

---

[१] ओ३म् लिफाफा [९]

लाला रूपसिंहजी आनन्दित रहो तारीख १६ जुलाई को एक पत्र आप का दो टिकट सहित और २३ जुलाई को ६०) रुपैये का मनियाडर हमारे पास आया इस बात पर जैसा कि हमने आशीर्वाद आर्य समाज फरुकाबाद को दिया वैसा तुमको भी देते हैं आप आगे की साल से फरुकाबाद मंत्री आर्य समाज कालीचरण रामचरण के पास साठ २ रुपैये हर साल भेजना ये रुपैये भी दो तीन दिन में फरुकखाबाद में उक्त मन्त्री के पास भेजेंगे वहां से अपना हिसाब समझ लिया करो शुक्रिया अदा करना इसका अर्थ संस्कृत में धन्यवाद देना ऐसा है।

मैं मेरठ में २० दिन तक रहूंगा मिति आषाढ सुदी १५ संवत् (१९३७)

(दयानन्द सरस्वती)

---

[२] ॥ ओ३म् ॥ लिफाफा [१०]

महाशय रूपसिंह जी योग्य इतः ब्रह्मचारी रामानन्द का अनेकविध शुभाशीर्वाद विदित हो आप का कुशलपत्र आया समाचार विदित हुए॥

आपने जो सत्यार्थ प्रकाश संस्कार विधि के विषय में लिखा परन्तु यहां मेरे पास न होने से भेजने में अशक्य हूं जो छापे खाने प्रयाग में होतीं तो भी मैनेजर दयाराम को लिख कर भिजवा देता और जो उस पुरुष को अत्यावश्यक हो तो आप मेरठ आर्य्य समाज प्रधान लाला रामशरणदासजी के पास दाम भेज कर पुस्तक मंगवा लीजिये अनुमान है कि वहां से पुस्तक आप को अवश्य

मिल जांयगी । जो आप ने गोरक्षार्थ पत्र के बाबत में लिखा सो हम ने जिस समय आप के पास पत्र भेजा था उसी समय लाहोरादि स्थानों में पत्र भेज दिये थे। ऐसा आर्य्यावर्त्त के भीतर कोई देश बचा हो कि जहां दो चार स्थानों में पत्र न भेजे हों। और जहां २ की यादगीरी आती जाती है वहां २ अभी भेजते जाते हैं। इस में कारण यह हुआ है कि डांक वालों ने अनर्थ किया है। जैसे इस विषय में आप का पत्र आया ऐसे ही कई एक महाशयों के पत्र आये कि पत्र पहुंचा परन्तु गोरक्षार्थ का मेमोरियल नहीं मिला। पुनः उन महाशयों के पास भेजना पड़ा। मैं ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करता हूं कि इस महोपकारक कार्य करने में आप को अत्यन्त सहायता मिले और जो पत्रों की आप को आवश्यकता पड़े तो लिखना भेज दूंगा। मैं एक बात आप से कहता हूं कि जो आप प्रसन्नता से स्वीकार करें तो क्या जैसे आप पहिले घूमने के वास्ते दो मास की छुट्टी ले कर आये थे ऐसे ही आप पुनः दो एक मास की छुट्टी लेकर पंजाब हाता, पटियाला और काश्मीर आदि अच्छे २ राज स्थानों में गोवध के नुकसान व्याख्यान द्वारा विदित कर, बड़े २ प्रधान राजपुरुष तथा राजा महाराजों की सही करावें तो बस आप आर्य्यावर्त्त में सर्वोत्तमप्रतिष्ठा और महापुण्य के भागी होंगे। यह लेख मैंने आप की योग्यता समझ के लिखा। आशा है कि आप अपनी योग्यता को सफल करेंगे ॥ किमधिक लेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥ अब १५ व २० दिन में श्रीयुत स्वामी जी यात्रा करेंगे विशेष समाचार फिर लिखूंगा ॥

आपका अभिवादन परम गुरु स्वामीजी को विदित कर दिया। श्री स्वामीजी का शुभाशीर्वाद आप को विदित हो ॥ भद्रमस्तु ॥ ज्येष्ठ वदी ९ शुक्र सम्वत् १९३८ ॥

ब्रह्मचारी रामानन्द

(३) —— (११)

ता० २ नवंबर सन् १८८१

चित्तौड़ राज मेवाड़

महाशय! श्रीमत्महाराज स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीजी यहां सुशोभित हैं। और आप का गुजरांवाले का कार्ड पहुंचा। यह आप को कुशल समाचार का पत्र भेजता हूं और आप भी अपने आनन्द मंगल का समाचार सदा भेजते रहना जिस से आनन्द होय।

रामानन्द ब्रह्मचारी

(४) ॥ ओम् ॥ (१२)

सर्दार रूपसिंह जी आनंदित रहो ॥ विदित हो कि पत्र आप का सं० १८८१ ई० ६ छः डिसम्बर का लिखा हुआ ता० १२ डिसंबर को यहां पहुंचा। पत्रस्थ समाचार विदित हुए। यहां श्री स्वामी जी महाराज की सत्कारपूर्वक श्री मान्महाराणा उदयपुरजी ने सेवा की। और यहां के दरबार में जितने राजा महाराजा आये वे सब श्री स्वामी जी महाराज के सत्योपदेश को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। और एक दिन महाराणा उदयपुर भी आये थे। कोई तीन वा चार घंटे तक स्वामीजी महाराजजी का सत्संग किया और राजधर्म वा पारमार्थिक विषय में जितनी बातें महाराज जी ने उपदेश कीं वे सब बातें राजा जी के ध्यान में जम गईं। और यह माडवाड़ वा मेवा (ड़) देश में व्याख्यान को कोई समझता ही नहीं। जितने लोग पूर्व पत्नी आये उन सब को स्वामी जी ने यथा तथा उत्तर देकर उन्हों को शंका रूपी दुःख सागर से छुड़ा दिया। अब यहां से श्रीस्वामीजी महाराज कल १४ चौदह डिसम्बर के मध्याह्नोत्तर के ४ बजे रेल में सवार हो कर १६ डिसम्बर के ८ बजे इन्दौर में उतरेंगे।

फिर वहां से मुंबई को पधारेंगे (प्रश्न मांस खाना बुरा वा अच्छा है) (उत्तर) मांस खाना बहुत बुरा है और वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं विधान नहीं है। जो संस्कार विधि में लिखा है वह दूसरों का एक देशीय मत दिखाने को लिख दिया है। कुछ उस एक देशीय मत होने से मांस खाना सिद्ध नहीं हो सकता। विशेष इस बा (त) को गोकरुणानिधि ग्रन्थ में देख लीजियेगा। उस में इस बात को प्रश्नोत्तरपूर्वक सिद्ध कर दिया है कि मांस खाना बुरा (प्रश्न दूसरा) मैं अङ्गरेजी पढ़ूं वा संस्कृत (उत्तर) जो कोई योग्य संस्कृत का पढ़ाने वाला मिले तो संस्कृत पढ़ा अवश्य ही चाहिये। संस्कृत के न पढ़ने का परिणाम तो तुम जानते ही हो कि हजारहों ईसाई और मुसलमान हो गये। जो योग्य अध्यापक न मिले तो अङ्गरेजी पढ़ते ही चले जाओ इस में कुछ हर्ज नहीं। प्रथम मेरा नाम राज वल्लभ था। अब श्री स्वामी जी नें मुझ को नैष्ठिक ब्रह्मचर्याश्रम की दीक्षा देकर मेरा नाम रामानन्द ब्रह्मचारी रक्खा है। और आप अपना कुशल पत्र मुम्बई में इस पते पर भेजना कि (मुकाम मुंबई बालकेश्वर पर श्री स्वामी जी के पास)। हम आनन्द में हैं। श्री स्वामीजी की कृपा से व्याकरण जो कि स्वामीजी ने बनाई हैं उन में से छः पुस्तक पढ़ली हैं और सातवीं का अब आरम्भ होगा॥

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु ॥ सम्वत् १९३८ पौष वदी ७ मंगलवार ता० १३ डिसम्बर सन् १८८१ ई० हस्ताक्षर (रामानन्द ब्रह्मचारी)

(५) ओम् (१३)

श्रीयुत मित्रवर आर्य्यकुलभूषक महाशय बाबूरूपसिंह जी योग्य इतः श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामीजी का आशीर्वाद पश्चात् रामानंद ब्रह्मचारी का अनेकधा शुभाशीर्वाद विदित हो ॥

हे मित्रवर आप का कृपा पत्र २७ जनवरी का लिखा हुआ १ पहिली फर्वरी को पहुंचा। और जो आप ने ५) रुपये का मनियाडर भेजा वह भी उसी दिवस मिला। हे महाशय आप के कुशलरूपी पत्र के अवलोकन करते ही ऐसा आह्लाद प्राप्त हुआ कि जिस को लिखने को भी अशक्य हूं ॥

भो मित्र ! मैं आप से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि आप के निवेदन किये हुए पदार्थ को अति आनन्द पूर्वक स्वीकार किया। परन्तु आप को अप्रिय लगे तो मेरी अयोग्यता समझ कर अपराध क्षमा करना। सुनिये जिस समय नये सहर में आप मुझ को चिट्ठी पत्र के खर्च के वास्ते द्रव्य दे गये थे वह आप का परमार्थ रूपी भार अभी मेरे पर विराजमान था। फिर बहुत शीघ्र आप ने धर्म रूपी भार निवेदन किया। मैं आप के परमार्थ रूपी भार से अति लज्जित होता हूं क्योंकि मुझ से आप का कुछ भी प्रत्यु(प)कार नहीं हो सकता। अतः मेरी प्रसन्नता तो आप के अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होने से है। परमात्मा परम दयालु ईश्वर आप की सदैव धर्मोन्नति विषय में प्रवृत्ति और अधर्म अवनति से निवृत्ति किया करे ॥

अब आप के प्रश्नों का उत्तर श्री स्वामी जी की आज्ञानुसार लिखता हूं। आशा है कि प्रसन्नता पूर्वक आप स्वीकार करेंगे ॥

(प्रश्न) दूसरी माता की सेवा करने का अधिकार पुत्र को पहिली माता के सदृश है वा नहीं ॥ (उत्तर) जो विद्यादि शुभ गुणों से युक्त हो और शिक्षा पूर्वक पुत्र पर प्रेम रखती हो उसका अनिष्ट चिन्तन कभी न करती हो तो साक्षात् अपनी माता के समान तन मन धन से सदैव सेवा करना योग्य है। जो इस प्रकार वर्त्ताव न वर्त्ते तो इतना पुत्र को सेवा करना योग्य है कि अन्न वस्त्रादि और अभिवादन से उस को प्रसन्न रखना अधिक सत्कार करने योग्य नहीं ॥ (प्रश्न) १२ वा १४ वर्ष की युवती कन्याओं से पुरुष विवाह कर लेते हैं। उन के साथ पुत्र को किस प्रकार वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये और विद्यादि शुभ गुणों की शिक्षा करे वा नहीं ॥ (उत्तर) यह साधारण मनुष्यों से होना अशक्य है क्योंकि स्त्री और पुरुष की परस्पर ऐसी आकर्षणता शक्ति है कि जैसे चुम्बक

पत्थर की लोहे के साथ। जिस समय युवति स्त्री और युवा पुरुष की आमने सामने दृष्टि पड़ती है उसी समय मन बिगड़ जाता है। बहुधा इन्द्रियों के वेगाश्रित होके अन्यथा व्यवहार मनुष्य कर बैठते हैं (इसमें) कुछ शंका नहीं। इस से सब से होना असंभव है। हां जो पूर्ण विद्वान् योगाभ्यासी अर्थात् जिस की इन्द्रिय आत्मा के वस में हो तो वह कर सकता है। स्त्री को शिक्षा करने का अधिकार उसके पति ही को है॥

(प्रश्न) नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र उन माता पिताओं के साथ किस प्रकार वर्त्तें। (उत्तर) जो स्त्री अपने वास्ते नियोग से पुत्र को उत्पन्न करे वह पुत्र उस स्त्री के मृतक पतिका होगा और उस के पदार्थोंका दायभागी होगा। जो पुरुष अपने वास्ते नियोग से पुत्र को उत्पन्न करेगा तो वह पुत्र उस पुरुष का होगा और उसी के पदार्थोंका दायभागी भी होगा। सेवा करना भी जिसका पुत्र कहावेगा उसी की तन मन धन से करना योग्य है। दोनों की नहीं कर सकता। इस प्रकार का निर्णय वेदादि सत्यशास्त्रों में विवेचन किया है। इन प्रश्नों के उत्तर तो सत्यार्थ प्रकाश संस्कारविधि में देखने से निवृत्त हो सकते हैं॥

मैं बहुत प्रसन्न होता हूं आपका बड़ा भारी यश समझता हूं जो आप प्रश्न लिख भेजते हैं। अब जो मेरे करने योग्य वह आप कृपा पूर्वक पत्र पर लिख भेजा करें॥ किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु॥ आजकल यहां गोरक्षा के विषय में व्याख्यान होते हैं। यहां कोई एक मास पर्य्यंत स्वामी जी का निवास रहेगा। फिर जहां को जानेका विचार होगा पत्र द्वारा मैं आपको विदित कर दूंगा और जो यहां विशेष वार्त्ता आप को लिखने योग्य होगी वह आप को निवेदन किया करूंगा॥ शुभम् ता० ३ फरवरी सन् १८८२ ई०

(हस्ताक्षर रामानन्द ब्रह्मचारी)

(६) ——— (१४)

श्रीयुत मित्रवर आर्य्यकुल-प्रभाकर महाशय बाबू रूपसिंह जी योग्य इतः रामानन्द ब्रह्मचारी का यथायोग्य नमस्ते विदित हो॥

हे महाजन आप के पत्र के प्रश्नोंका उत्तर श्रीयुत स्वामीजी के आज्ञानुसार लिखकर भेजदिया था। आशा है कि पहुंचा होगा। अब दो पत्र गोरक्षा के विषय के भेजता हूं जिस में एक पत्र तो सही करने का है जिस के ऊपर (ओ३म् और नीचे हस्ताक्षर) ऐसा चिन्ह है और दूसरा विज्ञापन पत्र

अर्थात् किस प्रकार महाशयों के हस्ताक्षर और मोहर होनी चाहिये इस विषय का है ॥

आशा है कि आप इस महोपकीर्त्ति को प्राप्त हो कर आर्य्यावर्त्त में सुशोभित होंगे । आप पंजाब हाथे में जहां तक आपका पुरुषार्थ चले वहां तक अपनी ओर सब महाशयों की सही करा कर शीघ्र स्वामी जी के पास भेज देंगे । इस में सही इस प्रकार करानी होगी कि जिस महाशय के मेल में जितने आर्य पुरुष हों उन सब की ओर से वह एक पुरुष अपने हस्ताक्षर कर दे कि इतने १०० इतने १००० इतने १००००० वा इतने १०००००००करोड़ पुरुषों की ओर से मैं अमुक नामा पुरुष अपने हस्ताक्षर करता हूं । इस प्रकार सही करके पश्चात् जितने पुरुषों की ओर से उसने सही की हो उन सब के हस्ताक्षर कराके अपने पास रखले । क्योंकि जिस समय मुकद्दमा सरकार में पहुंचेगा उस समय जब सरकार पूछेगी कि इतने मनुष्यों की ओर से तुमने हस्ताक्षर किये परन्तु उनकी सही तुम्हारे पास है कि नहीं तब दिखलाई जायगी कि है । इस लिये सही करा कर रखनी अवश्य चाहिये ॥

मुझ को दृढ निश्चय है कि कीर्त्ति के भागी आप होंगें । अब आप अपना पत्र शीघ्र भेजकर मुझ को कृतार्थ करेंगे जो कुछ मेरे करने का काम हो कृपा पूर्वक विदित करना । आशा है कि आप कुटुंब के सहित आनन्द में होंगे। मैं भी ईश्वर की कृपा से आनन्द में हूं ॥

परमात्मा परम दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर आपको सदैव आनन्द में रक्खे ॥ शुभम् सम्वत् १९३८ चैत्र कृष्णा ५ शुक्र ता० १० मार्च सन् १८८२ ई० ॥

[रामानन्द ब्रह्मचारी]

---

(७) ओ३म् (१५)

श्री स्वामी जी का आशीर्वाद विदित हो । स्वस्ति श्री मित्रवर बाबू रूपसिंह कलार्क जी योग्य इतः रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते । गोरक्षा की सही पहुंची । आपने यह काम धन्यवाद देने योग्य किया । अब भी सही कराईये । जो गोरक्षार्थ (मे) मोरियल पत्र न रहे हों तो लिखना परन्तु हस्ताक्षर अलग अक्षर स्पष्ट रहें जिस में सुगमता से पढ़ने में आवें । यहां हमारे पास श्रीयुत महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी शाहपुरा मेवाड़ से ४००० (०)

चाली हजार मनुष्यों की सही करा के भेजी है। श्री स्वामी जी मुम्बई से चलके खंडुवा, खंडुवा से इन्दोर अब इन्दोर से आज दो बजे रात्री की गाड़ी में बैठके रतलम को जायेंगे। वहां ८ वा १० दिन रह कर पश्चात् उदय पुर को जायेंगे॥

विशेष समाचार उदय पुर में पहुंचे के पश्चात् भेजूंगा। भद्रमिति। ता० जुलाई सन् १८८२ ई०॥ कल स्वामी आत्मनन्द सरस्वती जी इन्दोर में हमारेपास आगये॥

रामानन्द ब्रह्मचारी (इन्दोर)

---

(८) ओ३म् (१६)

श्रीः स्वस्ति श्री परोपकारप्रिय सद्गुण विभूषित महाशय बाबूरूप सिंहऽभिधेयेषु रामानन्द ब्रह्मचारिणो शतधाऽऽशिषो भूयासुस्तमां शमिहास्ति तत्र भवदीयंच नित्यमेधमानमाशासे ::

महाशय! नमस्ते। आप का शुभ समाचारों से अलंकृत अनुग्रह पत्र (मालवा नवाब का जावरा) में सुशोभित हुआ। अवलोकन कर अतीव हर्षित हुआ। परमात्मा से सदा यही प्रार्थना करता हूं कि आप महाशय पुरुषों की बुद्धि को परोपकार के करने में निरन्तर नियुक्त किया करे, जिस से पुनः यह आर्य्यावर्त्त देश अपनी पूर्व दशा को सम्प्राप्त हो कर अपने मनुष्यरूपी वृक्ष में धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी चतुष्टय फलों से संयुक्त होकर परमानन्द भोगे। धन्य है आप के पिता जी को जिन महाशय की ऐसी विशाल बुद्धि कि जो इस महोपकारक गोरक्षार्थ विषय को श्रवण कर अति हर्षित हुए और आप को उत्साही किया। परमात्मा करे ऐसे ही पिता सब के होवें। और आप मेरा मान्य पूर्वक आशीर्वाद भी विदित कीजियेगा। मैं नाम से विदित नहीं हूं परन्तु उनकी ऐसी योग्यता के जानने से मुझ को अति आनन्द हुआ और ऐसे परोपकार प्रियों के नाम से विदित होने की भी चेष्टा हुई। आशा है कि आप विदित कर देंगे। दूसरा यह हर्ष हुआ कि अब आप का उद्वाह होने वाला है और आप की योग्यता भी हुई अत्युत्तम है। आप प्रसन्नता के साथ अपना विवाह कीजिये। आप बहुत सारी बातें जानते भी हैं तथापि मेरा मन नहीं मानता इस कारण लिखता हूं। देखिये मूल कारण आर्य्य (।) वर्त्त के सुधार होने का उचित समय पर विवाह का होना और सत्योपदश। गृहाश्रम केवल भोग विलास के अर्थ नहीं किन्तु संसार की उन्नति के अर्थ है अर्थात् संस्कार विधि के अनुसार विवाहाऽनन्तर उचित समय पर

क्रिया करना। इस आश्रम का मुख्य फल यही है कि सुन्दर, धीर, वीर, विद्यादि शुभ गुण युक्त पुत्र रूपी फल की प्राप्ति होना। विना विधि के सांगोपांग कोई भी कार्य्य सिद्ध नहीं होता। इस लिये उचित समय पर जो आप को जिज्ञासा हो तो पत्र द्वारा विदित करना। मैं (श्रीयुत परम पूज्य गुरु जी) से पूछ कर आप को विदित करूंगा वैसाही करना होगा। आप विवाह किये के पश्चात् इस महोपकारार्थ पंजाब हाथा और काश्मीर आदि राजधानियों में जा गोरक्षा के विषय में (गोकरुणानिधि) के अनुसार व्याख्यान दे कर सही करावें तो क्या ही अत्युत्तम बात होवे कि जिस की उपमा भी मैं देने में असमर्थ हूं। परन्तु इतना तो कह सकता हूं कि थोड़े ही श्रम से महापुण्य का संचय कर अपने मनुष्य जन्म को सफल कर लोगे। जो तुमने सही कराके भेजी थी वह हमारे पास मुम्बई में पहुंची। अब जिन २ मनुष्यों की सही कराई जाय वह प्रायः देवनागरी के अक्षरों में होनी चाहिये। और स्पष्ट अक्षर जिस से स्पष्टता से नाम बंच जावे परन्तु जो पुरुष अप (ना) नाम किसी विद्या में न लिख सके उसका नाम सही कराने वाला पुरुष उसकी सम्मति से लिख दे और एक बही के समान पत्रों को बना कर उस में सब गोरक्षा प्रिय मनुष्यों की सही करानी। पश्चात् उस ग्राम वा नगर में जो माननीय प्रतिष्ठित पुरुष हो उस से हस्ता (क्ष) र गवाही के समान सही कराने के पत्र पर इस प्रका (र) (क) राना कि (हमारे यहां इतने मनुष्यों की सही हुई। पश्चात् अपना नाम लिख दे) यह रीति पीछे से श्री स्वामीजी ने प्रकट की है इस प्रकार के लेख से किन्हीं को राज सम्बन्धी भय न होगा। यह डरपुकनों के लिये है, मुख्य तो विज्ञापन पत्र के अनुसार सही कराना। गोरक्षार्थ आजकल भारत मित्र कलकत्ता ने पत्र छपवा के सही करा रहा है। मुम्बई के लोगों ने भी बहुत सी सही कर ली और बराबर कराते जाते हैं और गुजरात आदि देशों में भी सही होती है। और स्वामी के पास (मेवाड़ महा राजाधिराज नाहरसिंह जी) ने ४००० इतने हजार मनुष्यों की ओर से सही कर के भेज दी है। और मध्य देश में भी बहुत सी सही हो गई। प्रति दिवस होती जाती है। इस महोपकारक काम में डाक वालों ने दुष्टता बहुत भी की है क्योंकि बहुत से स्थानों को पत्र भेजे परन्तु उनके पत्र आने से यह विदित हुआ कि उनके पास नहीं पहुंचे। देखिये आश्चर्य की बात है (लाला राम शरण दास मेरठ के पास) ३०० पत्र रजिष्टरी करा के भेजे थे इतने पर भी उनके पास न पहुंचे पुनः उनके पास ५० पत्र भेजे हैं। परमात्मा कृपा करे कि ऐसे २ विघ्नकारी राक्षसों से

बचा कर इस महापकारक का की सिद्धि करने में आर्य भाईयों को सहायता देकर इस कार्य्य की सिद्धि करावे । किमधिक लेखेन परोपकारप्रियेषु । आज वा कल परमगुरु जी उदय पुर पधारेंगे। ता० २४ जुजाई १८८२ ई०।

रामानन्द ब्रह्मचारी मालवा जावरा नवाब का।

(९) ओ३म (१७)

सम्वत् १९३९ आश्विन वदी १४। महाशय बाबू रुपासिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विदित हो। महाशय कई एक पत्र आप के पास विस्तार पूर्वक समाचार लिख के भेजे परन्तु प्रत्युत्तर एक का भी न मिला। इस में क्या कारण हुआ। अब पत्र देखते ही अपना विस्तार पूर्वक समाचार भेजना। श्रीयुत जगद्गुरु स्वामी जी महाराज उदयपुर में विराजमान हैं। श्रीयुत आर्य्य कुल दिवाकर महाराणा जी अत्यन्त प्रेम से आते हैं और उपदेश सुनकर बहुत हर्षित होते हैं। कई एक बातों को छोड़ दीं जो कि हानिकारक हैं और कई एक बातें जो कि सर्व सुख दायक हैं उनको ग्रहण कर ली हैं। आशा है श्री स्वामी जी के प्रताप से यह देश भी पवित्र हो जायगा। गोरक्षार्थ यहां भी सही हो गई है। आशा है कि यहां के सम्बन्ध से अन्यत्र अर्थात् जोधपुराधीशों आदि राजाओं से हो जायगी। विशेष समाचार तुह्मारे पत्र आये के पश्चात् लिखूंगा।

(रामानन्द ब्रह्मचारी उदयपुर)

---

(१०) (ओ३म्) (१८)

महाशय बाबू रुपासिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्त विदित हो—

पत्र तुह्मारा पहुंचा। कुशल समाचार ज्ञात हुए। परमात्मा की कृपा से यहां श्री परमगुरु जी आदि सब आनन्द मङ्गलयुत हैं। अनुमान है कि अब थोड़े दिनों के पश्चात् स्वामी जी की उदयपुर से अन्य स्थानों को यात्रा होगी। मेरा निज समाचार आप से मित्रता होने के कारण विदित करता हूं कि मेरे पिता जी का स्वर्ग लोक हो गया है। इस कारण से अब मैं घर को जाने वाला हूं। अनुमान है कि १० वा १२ दिन के पश्चात् जाऊंगा। दूसरा प्रयोजन यह भी है कि मैं कुछ काल निरन्तर पढ़ना चाहता हूं। क्योंकि ब्रह्मचर्य्याश्रम केवल, मैंने विद्या पढ कर परोपकार करने के अर्थ लिया है और श्री परमगुरु स्वामी जी की

भी पूर्ण कृपादृष्टि है। अब आप को पत्र में फरुखाबाद पहुंचने पर दूंगा॥

अब जो आप के प्रश्न और जो फरुखाबाद में रुपये दिया करते हो उस का उत्तर श्री गुरुजी की आज्ञा से लिख लिखता हूं। आप निश्चित समझना॥

१ रुपयों के विषय में स्वामी जी ने यह आज्ञा दी कि रुपये फरुखाबाद में ही भेजना चाहिए और हमारे पास जितना रुपया पंडितों के मासिक में लगता है वह फरुखाबाद ही से लगा करता है। अभी हाल में २००) रुपये मुम्बई में मंगवाए थे। तुम कुछ संदेह मत करो। वहां से जब २ हम चाहते हैं मंगवा लेते हैं। इस लिए तुम वहीं भेजना॥

प्रश्नों का उत्तर—धर्म कार्य के करने में जो पिता आदि किसी प्रकार का विघ्न करें तो उनकी ऐसी बात सर्वथा अमन्तव्य है। हां, पुत्र को उचित है कि माता पिता चाहे कैसे ही दुष्टाचारी क्यों न हों उनकी अन्न वस्त्र से सेवा अवश्य ही करना चाहिये। जो वे पुत्र की सेवा न चाहें तो ऐसा करना उचित है कि जिस समय पुत्र अपने माता पिता को दुःखी देखे, उस सम(य) विना पूछे गाछे सेवा करना उस को चाहिए॥

२—चाहे कोई निन्दा या स्तुति करे तो भी धर्म जो कि सत्यभाषणादि है नहीं छोड़ना। क्योंकि लौकिक जितने मनुष्य हैं उन से मित्रता यहीं काम में आती है परन्तु परलोक में धर्म्म के विना दूसरा सहायक मित्र कोई भी नहीं है। देखिए इस विषय में एक श्लोक लिखे देता हूं आप कण्ठस्थ कर लेना—

(निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः)॥

इस का अभिप्राय यह है कि संसार में चाहे कोई निन्दा करे वा स्तुति, लक्ष्मी अर्थात् धनादि पदार्थों की प्राप्ति हो चाहे अप्राप्ति, और मरण चाहे इसी समय हो वा कालान्तर में परन्तु धीर पुरुष ऐसी २ विपत पर भी धर्म रूपी मार्ग नहीं छोड़ते। इस का फल यह है कि जो पुरुष ऐसा दृढनिश्चययुक्त धर्म पथ में स्थिर रहता है उस के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की प्राप्ति होती है॥

स्त्री का पढ़ाना अत्युत्तम है, यथेष्ट पढ़ाओ। और संस्कारविधि के अनुसार गर्भाधान संस्कार (कर) के पुत्रोत्पत्ति करना॥

हे प्रिय! अब मैं अपनी ओर से इतना विशेष लिखता हूं कि तुम अपनी स्त्री को इस मन्त्र को शुद्ध बतला देना—

(ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव) यजु०अ०३०मं०३

इस का अर्थ भूमिका में देख के सुना देना। इस समय पिताजी के देवलोक हो जाने के कारण विशेष आप को नहीं लिख सका, परन्तु जब २ आप को कुछ प्रष्टव्य हुआ करे आप अवश्य लिखा करें। मैं उत्तर देने में आलस्य न करूंगा॥

कार्त्तिक शुदी १ सम्वत् १९३९॥

(रामानन्द ब्रह्मचारी) उदयपुर

———

(११) ओ३म्॥ (१९)

आर्यवर श्री बाबू रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का आशीर्वाद विदित हो। जगदीश की कृपा से यहां सब प्रकार आनन्द मङ्गल है। आशा है कि तुम्हारे यहां भी सब प्रकार से कुशलता होगी। अब श्रीयुत जगद्गुरु श्री स्वामी जी यहां उदयपुर से फाल्गुण शुदी ७ गुरु० सम्वत् १९३९ को यात्रा अजमेर की ओर करेंगे, सो जानना। आगे जहां जाके निवास करेंगे सो तुम को लिखूंगा। बहुत दिनों से तुम ने अपना कुशल पत्र नहीं दिया इस में क्या कारण हुआ। अब आप इस पत्र के पहुंचते ही अपना कुशलपत्र भेजना। क्या मैंने एक वार तुम को लिखा था कि मैं श्री गुरुजी के पास से जाने वाला हूं, इस बात से न भेजा हो, परन्तु जिस बात के न होने से मैं जाना चाहता था अर्थात् पठन न होने से सो दयानिधि गुरुजी ने मेरे पढ़ने के लिए आधा दिन दे दिया है सो बड़ा पढ़ना होता है। अब अष्टाध्यायी के ५ अध्याय कण्ठ होगये हैं। ६ अध्याय पढ़ता हूं। श्री गुरुजी का आशीर्वाद विदित हो॥

मिति माघ शुदी १२ रवि सं० १९३९

रामानन्द ब्रह्मचारी उदयपुर।

———

(१२) ओ३म् (२०)

श्रीयुत महाशय श्री रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विज्ञात हो। आगे परमात्मा की कृपा से श्री जगत् गुरु जी के सहित सब लोग आनन्द में हैं। आशा है कि आप भी सकुटुम्ब आनन्द मंगल में होंगे। यह आप

का पत्र कई महीनों के पश्चात् आया। मैं तो निरास होगया थाकि अब रूपसिंह जी मुझ को भूल गये होंगे। परन्तु अब इस तुम्हारे पत्र से पूर्ण निश्चय होगया कि किसी कार्यविशेष से अपना कुशल पत्र आप न भेज सके। वर्त्तमान समय में श्री स्वामीजी राज देश मारवाड़ जोधपुर में फैजुल्लाखां जीके बाग में ठहरे हैं। यहां के प्रजापुरुष प्रतिदिन आते हैं। दो एकवार व्याख्यान भी हुए। बहुत से श्री स्वामी जी के अनुकूल हैं और यहां के जोधपुराधीश भी दो चार दिन के पश्चात् श्री स्वामीजी से मिलने को आने वाले हैं। और महाराजा जी के भाई महाराज राजाधिराज श्री प्रतापसिंह जी आते जाते हैं। उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। विशेष समाचार पश्चात् लिखूंगा। तुम पत्र के देखते ही अपना विस्तार पूर्वक कुशल समाचार का पत्र शीघ्र लिख भेजना॥

आषाढ बदी ५ सोम सं० १९४०

रामानन्द ब्रह्मचारी राज मारवाड़ योधपुर

---

(१) उर्दू पत्र। (२१)

चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो। वाज़ेअ हो कि पं० भीमसेन रुख़सत पर गया था। उस ने अब तक कुछ हाल नहीं लिखा और न वह आया। सो तुम इस ख़त के देखते ही उस का हाल लिखो कि क्या बात है। क्या उस ने हम को धोका दिया? हम उस को ऐसा नहीं समझते थे, सो तुम जल्दी लिखो। अगर उस ने धोका दिया है तो लिखो कि फिर दूसरी चिट्ठी आप को लिखेंगे। हम आज भरतपुर से जयपुर जावेंगे। आप भी सैर करना चाहें तो आजावें॥

भरतपुर १९ मार्च सन् १८८१

स्वामी दयानन्द सरस्वती

---

(२) (२२)

चौधरी ठाकर जालिमसिंह जी आनन्दित रहो। मेरा विचार जयपुर में १५ दिनों तक ठहरने का है। पश्चात् अजमेर जाना होगा। यहां के मनुष्यों का सुधार असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। बहुत काल में सुधरेंगे तो सुधरेंगे, नहीं तो अधिक बिगड़ जायंगे। अब देखिये कि जैसी भीमसेन की इच्छा थी वैसा ही १५ रुपैये माहवारी और १) एक रुपैये हाथ खर्च और खाने में ः) रु० से कम नहीं लगते। इस ने एक महिना कि जबतक उस का मासिक पूरा न हुआ था तब तक

काम भी अच्छा करता था। अब ठीक २ नहीं करता। ये लोग भीतर के मैले और ऊपर के शुद्ध दिखलाई देते हैं। अच्छा, जब तक बनेगा तब तक रखना होगा। बहुत अपराध करेगा तब निकाल देना पड़ेगा। देखिये मैंने इस से कहा था कि जो तेरा भाई रसोई कर सके तो लाना, नहीं आप के मार्फत रसोईया लाने को कहा था। परन्तु लोभ का मारा अपने महा मूर्ख जड़ बुद्धि को ले आया। आज इस को रसोई बनाते १५ दिन होचुके, कुछ भी न आया और न आगे आने की आशा है। आज भी इस ने रसोई जला दी। अब आप को मैं लिखता हूं जो कोई रसोईया चतुर और धर्मात्मा आप की जान में हो तो यहां जयपुर में भेज दीजिये। और जो वहां न मिल सके तो लिखिये। फिर यहां से तजवीज हो जायगा। सब से मेरा नमस्ते कह दीजियेगा। मि० चै० शु० ८ गुरुवार सं० १९३८ ता० ७ मार्च ॥

{दयानन्दसरस्वती} (जयपुर)

---

(३) (ओ३म्) (२३)

श्रीयुत चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो—जब वह स्वीकारपत्र छपेगा तब एक कापी तुम्हारे पास भेज देंगे। भीमसेन को ना हम अपने पास वा न अन्यत्र कुछ काम देना चाहते हैं। वह काम करने में अयोग्य और वह स्वभाव का भी बहुत बुरा आदमी है। हम उस के विषय में पहले भी लिख चुके हैं और वह न किसी आर्य्यसमाज में रहने के योग्य है। यदि कहीं जायगा बुरे हवाल निकाला जायगा। अन्यत्र जहां उस की इच्छा हो जाये, चाहे न जाये, उस की खुशी। परन्तु हम उस को कहीं नोकर वा काम कराना नहीं चाहते। यह सब एक जात बद्री ब्राह्मण सिकन्दरपुर के सदृश हैं। चाहे इनके ऊपर कितनी दया करो वे कृतघ्न(ता) ही करते जाते हैं। जब से वह गया है तब से जो पुरुष हमारे पास हैं आनन्द में रहते हैं। यदि वह होता तो न जाने अबतक कौन जाता कौन रहता। केवल वह दंभी और मिथ्याचारी है। यदि बद्री ब्राह्मण का विष देने का कर्म प्रसिद्ध होगया है तो उस को जैलखाने भेज दिया वा नहीं ठीक साबूती हो तो उस को अवश्य जैलखाने में भिजवा देना चाहिये। जिस से दूसरा भी कोई ब्राह्मण ऐसे काम करने की इच्छा न करे। बड़ा शोक है उस बद्री दुष्ट पर कि जिस की आप लोगों ने हजारह रुपये की सेवा की और उस का फल उस कुपात्र

ने शाला लेना चाहा था। हम यहां राजधानी शाहपुरा राजमेवाड़ जिले अजमेर में ठहरे हैं। कुछ एक आध महीना यहां रहेंगे। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा ॥

मि० चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९

(शाहपुरा)

(हस्ताक्षर) [दयानन्दसरस्वती]

---

[४] ओ३म् [२४]

चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो—भीमसेन के दो पत्र आजकल हमारे पास यहां आये हैं। विदित होता है कि धक्का खाने पर इस को कुछ बुद्धि आई है। अब आप लिखिये कि जब से यह वहां आया, तब से उस का वर्त्तमान पोपलीला का हुआ वा अच्छा। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि फिर भी वह हमारे पास नौकरी करना चाहता है। और हम को उस के पूर्व चरित्रों से पूरा विश्वास नहीं होता कि यह जैसा लिखता है कि अब मैं सब बात समझ गया, आप से विरोध कभी नहीं करूंगा आप की सब बातों में मेरा दृढ़ विश्वास होगया, अब मैं आप की आज्ञानुसार सदा चलूंगा इत्यादि, परन्तु वह छोकर बुद्धि है। यदि उस को रखलें पुनः अनुचित काम करे निकालना हो तो अच्छी बात नहीं। अब आप लिखिये इस में आप की क्या सम्मति है क्योंकि मैंने उस के बहुत से उलटे चरित्र देखे हैं और इस में अच्छे भी गुण हैं परन्तु बुरे गुण ऐसे प्रबल हैं कि अच्छे गुणों को मात कर देते हैं। यदि परमेश्वर की कृपा से उस का स्वभाव सुधर गया हो तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु जब तक इस पत्र का उत्तर आप भेजेंगे तिस पश्चात् मेरी जैसी सम्मति होगी वैसी आप को और भीमसेन को लिखदूंगा। देखिये कि बदरी आप को और मुझ को कैसा भलामानस दीखता था और कैसा दुष्ट निकला। इसलिये उत्तम धार्मिक पुरुषार्थी मनुष्य का सहसा मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। बड़े भाग्य और परमेश्वर की कृपा से उत्तमपुरुष को उत्तम पुरुष मिलता है। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। मुझ को निश्चय है कि आप पक्षपात रहित यथार्थ लिखेंगे।

मिति भाद्र सुदी ४ संवत् १९४०

[दयानन्दसरस्वती]

जोधपुर राज मारवाड़

(५) ओ३म् (२५)

चौधरी जालिमसिंहजी आनन्दित रहो—पत्र आप का आया, समाचार विदित हुआ। आप के लिखने अनुसार उस का अपराध क्षमा करके बुला लेंगे, वा कहीं अन्यत्र भेज देंगे, परन्तु उस को आप भी समझा देना। और एक कहार की हम को जरूरी है। यदि मिल सके तो आप लिखिये। और आज भीमसेन के पास भी पत्र भेज दिया है। और हम अब यहां से शीघ्र अन्यत्र जावेंगे। और जब निश्चित जाने का दिन होगा तब आप के पास पत्र भेज देंगे॥

सम्वत् १६४० मि० आश्विन कृ० ४ गुरुवार *

[दयानन्दसरस्वती] जोधपुर राज मारवाड़।

---

(१) ओ३म (२६)

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो।

पत्र आप का आया, समाचार विदित हुआ। ऐसे जो आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध व्याख्यान होते हैं तो उन को रोक दीजिए। यदि रोकने से न मानें तो दूसरे स्थान में करें। और मेरी निन्दा करते हों उस पर कुछ ध्यान न देना चाहिए, क्योंकि निन्दक निन्दा ही किया करते हैं और क्षमावान क्षमा ही करते हैं। ऐसों की निन्दा से क्या होसका है। इन मुन्शी इन्द्रमणि तथा जगन्नाथदास का हाल मुझ से भी अधिक आप जानते ही हैं क्योंकि सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम। सो जैसे इन में गुण कर्म हैं वैसा करते हैं, करो। अब एक नई बात की है कि विज्ञापन के तौर पर लिख के छपवा के जहां तहां भेजा है कि जो धन मेरे मुकद्दमा के लिए आया था उस के मालिक स्वामी जी तथा लाला रामशरणदास जी बन बैठे। देखो कैसी मिथ्या बात है। ऐसी २ बातों के प्रसिद्ध करने से इन की ही फजियत होगी। और जगन्नाथदास आदि को समाज का सभासद नहीं किन्तु कलंक समझना चाहिए। ऐसे लोगों से कुछ सुधार की आशा नहीं होती कि जो पहिले अच्छे जान पड़ें और पीछे से बिगड़

---

* यह पत्र इस पते पर भेजे गये थे। चौधरी जालिमसिंहजी गाम रूपधनी, जिले एटा थाने धूमरी० एटा०। इन पत्रों के उत्तर के लिये देखिए 'पत्र व्यवहार' पृष्ठ ६१-६५।

जांय। अब इन की सब बातें खुलेंगी तब कोई भी इन का विश्वास न करेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना॥ सं० १९३९ पौष वदी १२ शनिवार।

(दयानन्द सरस्वती)

---

(२) ओ३म् (२७)

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो—

कुछ दिन हुए कि एक रजिष्टरी पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद की ओर से आया था। उस में यह विषय था कि जो देशहितैषी में प्रश्नोत्तरी के विषय में छपा है सो किस की ओर से है। आप की सम्मति से है वा नहीं। उस का यही उत्तर है कि वह किसी की ओर से छपा हो, अच्छा है, क्योंकि प्रश्नोत्तरी में जितने विरुद्ध विषय लिखे गये थे उन के सत्यासत्य निर्णय के लिए उन का उत्तर छपना योग्य था। और मैं भी उस प्रश्नोत्तरी के विरुद्ध विषय के उत्तर में सम्मत हूं क्योंकि जो ऐसा न हो तो जिस के मन में जैसा आवे वैसी ही बात लिखकर चला देवे। सब मनुष्यों को यही उचित है कि सत्यासत्य का निर्णय कर करा के सत्य को मानना, मिथ्या को छोड़ देना। अब इस का उत्तर दीजिए कि जो १००) रुपये वैदिक यन्त्रालय के सहाय आर्यसमाज मुरादाबाद से आये थे उस के देने की प्रतिज्ञा तीसरे वर्ष की पूर्ति तक थी। सो आगामी वैशाख की पूर्ति में तीसरा वर्ष पूरा होगा। सो वैशाख तक जहां २ से जितने २ रुपये आये हैं, दिए जायंगे। अब उस में यह भी प्रतिज्ञा थी कि व्याज के बदले १०) रु० के पुस्तक और मूल रुपये भी दिए जायंगे। सो किस प्रकार किस के पास भेजा जाय। समाज से सम्मति लेकर लिखिए। और १०)रु० के कौन पुस्तक लेना है सो भी लिखना। यहां का समाचार बहुत अच्छा है पीछे लिखेंगे। और हमारा आशीर्वाद सब से कह दीजिए।

सं० १९३९ मार्ग शु० ७ रविवार।

ह० (दयानन्द सरस्वती)

---

(३) ओ३म् (२८)

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो।

मुन्शी इन्द्रमणी जी और लाला जगन्नाथदास समाज में रहने के योग्य नहीं हैं क्योंकि केवल मेरी निन्दा करने से मेरा वे कुछ नहीं बिगाड़ सकते

परन्तु जो देश की उन्नति और उन्नत्यर्थ समाज के उद्देश हैं उन से उन का आचरण विरुद्ध है। अब देखिए इन का सच और झूठ मुसलमानों के साथ मामले में प्रसिद्ध होगया है। अब वे कितना ही उद्योग करें परन्तु वह उन के लिये सफल न होगा इसलिये मुन्शी इन्द्रमणिजी का सभापति और लाला जगन्नाथदास का पुस्तकाध्यक्ष रहना अयोग्य है। क्योंकि मैंने प्रथम इन दोनों के पास प्रयाग से पंडित सुन्दरलाल जी की मारफत बहुत से पुस्तक रक्खा और विक्रयार्थ भेजे थे। उन का हिसाब आज तक उन्होंने नहीं दिया। सिवाय अपने मतलब सिद्ध करने के लिये, देशोन्नति का नाममात्र कह के, स्वप्रयोजन करने के अन्य कुछ भी नहीं दीख पड़ता। हां प्रथम यत्किंचित था सो लोभादि दोष ने अब नष्ट कर दिया। इसलिये जो उन का संगी हो उनके साथ जाने दो। और बाकी समाज उन से अलग कर दीजिये और रजिष्टर तथा समाज का धन उन को कभी मत दीजिये। यदि कोई दूसरा समाज होता तो लाला जगन्नाथदास को, इस समाज पर धिक्कार है, कहते समय पर ही हाथ पकड़ धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता और उसी वक्त उस का नाम कट जाता। ऐसे दुष्ट भाषण करने वाले पुरुषों का समाज में रहना परम दूषण है। देखो मुम्बई समाज ने ऐसी बातों से बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि को प्रधान पद से शीघ्र च्युत कर दिया। ऐसा ही अनेक समाजों में हुआ है। इसी से समाज की उन्नति है। बस आप अपने स्थान पर समाज किया कीजिये। समाज के नियमों पर दृढ़ रहिये और उन से अलग आप और जो समाज के हितैषी आर्य्यावर्त देश की उन्नति चाहें वे भी आप के साथी हों। और जो उन के संगी हों वे उन के साथ जावें। और अन्य समाज के सभासद आने की वहां आवश्यकता क्यों समझते हैं। क्या आप समाज के सभासद नहीं हैं। आप ही जो कि लिखने में बातें नहीं आतीं समाज की ओर से अन्तरंग सभा में प्रसिद्ध कर दीजिये और ४७) रु० समाज के जमा और रजिष्टर पुस्तक उन को न देने में जो कुछ वे आप की निन्दा करेंगे उस से आप की कुछ भी हानि नहीं हो सकती। और आप निश्शंक कह दीजिये कि हम मुन्शी इन्द्रमणीजी और लाला जगन्नाथ दास को सभा के अधिकारी वा सभासद रखना नहीं चाहते। न इनके साथ हम, वा हमारे साथ वे रहें। और न इनके संग देश की उन्नति हो सकती है। इसलिये हम आज से समाज का कार्य स्वतन्त्र होकर इन महात्माओं से पृथक् करते हैं। और उसी समय से पृथक् हो जाइये। बहुत से मुरादाबाद के रईसों ने प्रथम ही मुझ से कहा था कि जैसा मुन्शी इन्द्रमणीजी को आप जानते हैं वैसे नहीं हैं, सो ऐसा ही हुआ। और इसी लिये मैंने स्वीकारपत्र अर्थात् वसीयतनाम

में से मुन्शीजी को पृथक् कर दिया। उन का सच और झूठ इतने ही नमूने से समझ लो कि उन्हों ने विज्ञापन दिया था कि हमारे पास मेरठ समाज से मामले के सहाय में केवल ६००)रु० ही आये और मेरठ समाज के हिसाब से ६६३॥।=)॥ * पहुंचे हैं। यह महा झूठ नहीं तो क्या है? इसलिये सज्जनों का विदित कराता हूं कि यदि आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति चाहो तो मुन्शी इन्द्रमणीजी और लाला जगन्नाथ दास के अन्यथा आचरण से पृथक् हो के देशोन्नति किया करो। इनके समाज में मेल से सिवाय हानि के दूसरा कुछ भी नहीं है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर अपनी कृपा कटाक्ष से देशोन्नति में दृढ़ोत्साही कटिबद्ध करें कि जिस से मुन्शी इन्द्रमणीजी तथा लाला जगन्नाथ दास के किये हुए विघ्न आप लोगों को निरुत्साही न करें और तन मन धन से देशोन्नति में तत्पर रक्खे। (अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु)

मि० वै० शु० ६ सं० १६४० }
शाहपुरा राज्य मेवाड़ }

ह० दयानन्द सरस्वती

---

(४) (ओ३म्) (२६)

श्रीयुत प्रधान दुर्गाचरणादि तथा श्रीयुत साहू श्यामसुन्दरजी आनन्दित रहो।

कार्ड आप का आया समाचार विदित हुआ। जो प्रधान और पुस्तकाध्यक्ष जो कि आर्य्यसमाजों के उद्देशों के विघ्न थे पृथक् कर दिये गये बहुत अच्छी बात हुई। अब आप का समाज उन्नतिशील होगा और यही बात देशहितैषी और भारतसुदशाप्रवर्त्तक तथा मेरठ और लाहौर के समाज के पत्रों में छपवा दीजिये। और आगे को कोई समाज के उद्देशों से विरुद्ध आचरण, भाषण करे उस को एक दो बार समझा दीजिये और न समझे तो इसी प्रकार पृथक् करते रहिये। और अब वैदिकयंत्रालय में आप के समाज के १००) रु० लगे हैं और १०) के पुस्तक वैदिक यंत्रालय से मंगवा लीजिये, अथवा ११०) रु० ही के पुस्तक मंगवा लीजिये। और सब सभासदों से मेरा आशीर्वाद कह दीजिये॥

मि० ज्ये० शु० १ सं० १६४० बुधवार जोधपुर

(ह० दयानन्द सरस्वती)

---

* इस पत्र की जो नकल हमें प्राप्त हुई थी, उस में ६३॥।=)॥ लिखे थे, परन्तु समस्त पुरातन लेखों में ६६३॥।=)॥ देख कर हम ने वैसा ही कर दिया है। यह स्पष्ट ही नकल करने वाले का दोष है॥

(१) (३०)

स्वस्ती श्री श्यामजीकृष्णवर्मा के लिये, जो स्वविद्या और वैदिक धर्म मार्ग में उत्साह के कारण प्रशंसनीय है इत्यादि के लिये दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद हो। शोक है तुम ने कुछ काल से पत्र द्वारा मुझे आह्लादित नहीं किया। अब तुम निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देकर मेरे हृदय को आनन्दित करोगे, इस आशा से लिखता हूं—

वहां इङ्गलैण्ड में किस प्रकार के मनुष्य हैं? उन के विशेष गुण, स्वभाव और कर्म क्या है? वहां भूमि, जल और वायु की क्या प्रकृति है? कैसे भोज्य अन्न और पेय वहां मिलते हैं और कौन से पदार्थ "लिह्य वा चूष्य" हैं? जब से तुम ने इस देश को छोड़ा, तब से क्या तुम स्वस्थ रहे हो? क्या तुम्हारे इङ्गलैण्ड जाने का प्रयोजन प्रतिदिन पूर्ण होरहा है? कितने जन तुम्हारे साथ संस्कृत पढ़ते हैं और कौन से ग्रन्थ वे पढ़ते हैं?

तुम्हारा मासिक आय क्या है और तुम्हारा व्यय क्या है? तुम्हारे अध्ययनाध्यापन और सन्ध्योपासन का कौन २ सा समय है? क्या कारण है कि सत्यधर्म के सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने के लिये तुम्हारी कीर्ति इङ्गलैण्ड में उतनी शीघ्रता से नहीं फैली कि जितनी पूर्व इस आर्य्यावर्त्त देश के भिन्न २ भागों में हुई? कदाचित् हमारे श्रवण करने से पूर्व ही तुम ने यश प्राप्त कर लिया है, क्योंकि हम तुम से दूरस्थ हैं अथवा कदाचित् तुम्हें अवकाश नहीं मिला। यदि यही बात है तो मेरा हार्दिक उपदेश है कि ज्यूंही तुम "पठन पाठन" समाप्त करो, तुम्हें वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ व्याख्यान देने चाहियें और तब यहां लौटना, पर इस से पूर्व नहीं, क्योंकि एवं प्राप्त सुकीर्ति धन सञ्चय से श्रेयसी है, नहीं, यह "शिवकरा" है। हमारे प्रिय अध्यापक मोनियर विलियम्स और "मोक्षमूलर" की वेदों और अन्य शास्त्रों के विषय में अब क्या सम्मति है? क्या उन्हें वा अन्यों को "तदर्थ प्रचाराय" कोई मान है? क्या यह सत्य है कि "नंद नगर" में थ्यासोफीकल सोसयटी ने एक "वैदिकी शाखा" स्थापित की है? क्या तुम ने कभी श्रीमती महाराणी भारत "राजराजेश्वरी" के दर्शन किये हैं? क्यां तुम ने "पारलीमैण्टाख्यसभा" देखी है?

कृपया इन प्रश्नों का उत्तर अतीव शीघ्र देना और मुझे अन्य विषयों पर जिन्हें तुम वर्णनीय समझते हो, विस्तार से लिखना। अलमतिविस्तरलेखन बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

मुनिरामाङ्क भूम्यब्दे आषाढस्य शुभेदले। षष्ठ्यां च मंगले वारे, पत्रमिदमलेखिषम् ॥

(१) (३१)

श्रीमन् श्रेष्ठोपमायोग्य आर्य्यसमाजस्थ प्रधान और मंत्री आदि सभासदा आनन्दित रहोः—

विदित हो कि श्रीयुत द्विवेदी श्रीमाली राज मसूदा के मुख्य मंत्री श्रीमान् छगनलाल जी को यह पत्र लिख के दिया जाता है इस लिये कि उक्तजन जिस किसी आर्य्यसमाज में उपस्थित होवें, तो इन का सत्कार स्वात्मवत् प्रिय बांधुवत् करना उचित है क्योंकि ये भी वेदोक्त धर्म्माचारी और आर्य्यसमाज अजमेर के सभासद हैं और इन को संवत १९२३ के वर्ष से जानते हैं। ये सज्जन पुरुष हैं, उस समय अजमेर में एक साहूकार के यहां इन के पिता जी मुनीम थे, तथा अपने घर में और अन्यत्र भी प्रतिष्ठित थे। और ये आचार विचार तथा शास्त्र विषयों में भी समझते हैं, चाल चलन भी इनका श्रेष्ठ है, और परोपकारी धार्मिक विश्वसनीय हैं, हमने बहुत प्रजास्थ पुरुषों से परोक्ष में पूछा तो उनने कहा कि ऐसा कामदार हमने आगे कभी न देखा था। सब प्रजा इन से प्रसन्न हैं। इस से हम ने जाना यह इस समय में भी धार्मिक जन है। मि० आ० शु ११ सोमवार संवत १९३८॥

दयानन्द सरस्वती मसुदा मुहर-मुहर-मुहर

(१) ॥ ओ३म् ॥ (३२)

सम्वत् १९३७ चैत्र शुदी १२ गुरुवार। राजा शिवप्रसादजी आनन्दित रहो। आपका चैत शुक्ला ११ बुधवार का लिखा पत्र मेरे पास आया। देखि के आपका अभिप्राय विदित हुआ। उस दिन आप से और मुझ से परस्पर जो २ बातें हुई थीं तब आपको अवकाश कम होने से मैं न पूरी बात कह सका और न आप पूरी बात सुन सके क्योंकि आप उन साहिबों से मिलने को आये थे। आप का वही मुख्य प्रयोजन था। पश्चात् मेरा और आपका कभी समागम न हुआ जो कि मेरी और आपकी बातें उस विषय में परस्पर होतीं। अब मैं आठ दश दिनों में पश्चिम को जाने वाला हूं। इतने समय में जो आपको अवकाश हो सके तो मुझ से मिलिये। फिर भी बातें हो सकती हैं। और मैं भी आपको मिलता परन्तु अब मुझको अवकाश कुछ भी नहीं है इस से मैं आपसे नहीं मिल सकूंगा क्योंकि जैसा सन्मुख में परस्पर बातें होकर शीघ्र सिद्धान्त हो सकता है वैसा लेख से नहीं इस में बहुत काल की अपेक्षा है।

आपका प्रश्न	मेरा उत्तर।
१ आपका मत क्या है ?	१ वैदिक।
२ आप वेद किसको मानते हैं ?	२ संहिताओं को।
३ क्या उपनिषदों को वेद नहीं मानते ?	३ मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ के अन्य उपनिषदों को नहीं मानता। किन्तु अन्य सब उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं।
४ क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ?	४ नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त नहीं। जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत है। जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्ति सत्य और मत के साथ स्वीकार करने के योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं। परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं। वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं। इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं।

अब रह गया यह विचार कि जैसा संहिता ही को ईश्वरोक्त निर्भ्रान्ति सत्य वेद मानना होता है वैसा ब्राह्मण ग्रन्थों को नहीं, इसका उत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नवमें पृष्ठ से लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति, वेदों का नित्यत्व, और वेदसंज्ञाविचार विषयों को देख लीजिये। वहां मैं जिसको जैसा मानता हूं सब लिख रक्खा है। इसी को विचार पूर्वक देखने से सब निश्चय आपको होगा कि इन विषयों में जैसा मेरा सिद्धान्त है वैसाही जान लीजियगा॥

(दयानन्द सरस्वती) काशी।

(२) (३३)

राजा शिवप्रसाद जी आनन्दित रहो ! आपका पत्र मेरे पास आया देखकर अभिप्राय जान लिया। इससे मुझको निश्चय हुआ कि आपने वेदों से लेके पूर्वमीमांसा *पर्यन्त विद्या पुस्तकों के मध्य में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ संबन्धों को जाना नहीं है। इस लिये आपको मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ। जो आप मेरे पास आके समझते तो कुछ समझ सकते। परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों के प्रत्युत्तर सुनने की इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती वा बालशास्त्री जी को खड़ा करके सुनियेगा तो भी आप कुछ २ समझ लेंगे क्योंकि वे आपको समझावेंगे तो कुछ आशा है समझ जांयगे। भला विचार तो कीजिये कि आप इन पुस्तकों के पढ़े बिना वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में संबन्ध, क्या २ उन में है और स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परतः प्रमाण और ऋषि मुनि कृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या २ सिद्धान्त सिद्ध होते और ऐसे हुए विना क्या २ हानि होती है इन विद्या-रहस्य की बातों को जाने विना आप कभी नहीं समझ सकते॥

सं १९३७ मि० वैशाख सप्तमी शनिवार

(दयानन्द सरस्वती)

—-•—

(१) (३४)

लाला जीवनदास जी आनन्दित रहो॥ पत्र आपका आया समाचार विदित हुआ। यहां पारसी खत पढ़ने वाले बहुत कम हैं इंग्लिश के पाठक बहुत हैं। इस लिये जब कभी लिखें तब नागरी वा इंगरेजी में लिखें इस पत्र का मतलब हम ठीक २ नहीं समझते हैं जितना समझा है उतने का उत्तर लिखा जाता है। (सूद) शब्द का अर्थ जो रसोई करने वालों का है। यही अर्थ अन्यत्र सूत्रादि में भी है। पाककर्त्ता का कोई दृढ निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि पाचक सब वर्णों में होते है अब तो इस से सनातन का व्यवहार ही प्रमाण हो सकता है। जो आप लोगों में यज्ञोपवीत होता और धरावट अर्थात् विधवा को पुनः दूसरे

* इस स्थल पर राजा जी ने अपने निवेदन में एक टिप्पण दिया है। उस में उन्होंने इस बात पर हास्य किया है कि स्वामी जी महाराज पूर्वमीमांसा पर्यन्त ही पढ़े थे, उन्होंने उत्तर मीमांसा न देखी थी। राजा जी इस पर बड़े प्रसन्न दीखते हैं, परन्तु यह भी उनका अज्ञान है। उन्हें यह ज्ञान नहीं कि अंतिम आर्षग्रन्थकार जैमिनि मुनि हुए हैं। उन्हीं का बनाया पूर्वमीमांसा है। ग्रन्थ गणना में चाहे वह पहले गिना जाय वा पीछे, परंतु रचयिता दृष्टि से जैमिनि ही अंतिम हैं, अतएव ऋषि का उपयुक्त लेख सत्य ही है।

के घर में बैठाना नहीं होता तो शूद्र वर्ण में गणना आप लोगों की नहीं । अब यह विचारना चाहिये कि (सूद) लोग क्षत्रिय हैं अथवा वैश्य जो राजधर्म राज्य करना आप के पुरुष शौर्यादि गुणयुक्त युद्ध में कौशल वाले हुए हों तो क्षत्रिय और जो वैश्य के व्यापारादि कर्म और गुण हों तो वैश्य समझना चाहिये । अब आप लोग ही इस का निश्चय कर लीजिये ।

और जो कभी (सूत) शब्द बिगड़ के सूद हो गया हो तो आप अवश्य क्षत्रिय वर्ण हैं । हम ने सुना है कि आज कल बाबू नबिनचन्द्रराय लाहौर में हैं और विधवा विवाह में प्रयत्न कर रहे हैं और आर्य्यसमाज लाहौर भी इस बात में बाबू जी से संमत हो गया है । ये ब्राह्मसमाजी लोग भीतर और तथा बाहिर और बात रखते हैं इन का यह भी मतलब होता है कि जैसे हम लोग कृश्चिनों के तुल्य अपमानित हुए हैं वैसे आर्य्यसमाज भी हो जाय परन्तु जो अक्षतयोनि अर्थात् जिस का पुरुष के साथ कभी संयोग न हुआ हो उस कन्या के पुनर्विवाह करने में कुछ दोष नहीं और जिस का पुरुष से संमेल हुआ हो उस का नियोग करने में अपराध नहीं । इस से विपरीत करने से शास्त्र से विरुद्ध होने से अब अथवा पश्चात् बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा अर्थात् वर्ण बाह्य होना होवे तो भी कुछ संशय नहीं । सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा ।

---

(३५)

ओ३म्

(१)

चोबे कन्हैयालालजी आनन्दित रहो नमस्ते ।

विदित हो कि पत्र आप का आया समाचार विदित हुए । आप ने प्रश्न किये सो सब हमारे पुस्तकों में उत्तर सहित लिखे हुए हैं उन में देखने से सब बातें विदित हो सकती हैं । तुम ने प्रथम ही बार ये प्रश्न किये हैं इस लिये इस दफे तो सब के उत्तर देते हैं परन्तु आगे हम से प्रश्न करोगे तो हम उत्तर नहीं देंगे क्योंकि हमको काम बहुत है इस कारण से समय बिलकुल नहीं मिलता । उत्तर (१) संध्योपासन और गायत्र्यादिनित्य कर्म द्विजों अर्थात् तीनों वर्णों के लिये एक ही हैं तीनों वर्ण गुण कर्मों से माने जायंगे, जन्म से नहीं । शूद्र जो विद्यादि गुणों से हीन है इस कारण से उसे संध्योपासन नहीं आसकता । इस लिये वेद के किसी मंत्र को याद करके जपा करे ।

उ० (२) कायस्थ अंबष्ठ हैं शूद्र नहीं । इस विषय में संक्षेप से लिखा है विस्तार पूर्वक शास्त्रों के प्रमाण देकर लिखने को समय नहीं है ।

उ० (३) मुसलमानादि अन्य मत वाले वैदिक मत में आवें तो वे जिस वर्ण के गुण और कर्म युक्त हों उसी वर्ण में रह सकते हैं । विवाह और खान पानादि

व्यवहार भी अपने समान वर्ण के साथ करें। आज कल के आर्य्य लोग उनके साथ उक्त व्यवहार नहीं करेंगे, इस लिये अपने लोगों में ही करें और मन वैदिक रक्खें इस में किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार संक्षेप से दिये हैं। विस्तार पूर्वक हमारे बनाये ग्रन्था म देखलो।

ता० १६ अप्रैल
सं० १८८१ ई०

हस्ताक्षर
दयानन्द सरस्वती
स्थान जयपुर राजपूताना

---

(१) ओ३म् (३६)

सही करने का पत्र।

ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है, जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किये अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है, वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये। क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा, जो परोपकार रूप धर्म्म और परहानि स्वरूप अधर्म्म के सिवाय धर्म अधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करत हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन मन और धन से जगत् में परहानि कर के बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टिक्रम से ठीक २ यही निश्चय होती है कि परमेश्वर ने जो २ वस्तु बनाया है, वह? पूर्ण उपकार लेने के लिये है। अल्प लाभ से महाहानि करने के नहीं विश्व में दो ही जीवन के मूल है, एक अन्न और दूसरा पान। इसी अर्थ अभिप्राय से आर्य्यवर्त शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे। अब भी वे इन गाय,बैल और भैंस को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते हैं, क्योंकि अन्न और पान की बढ़ती इन्हीं से होती है। इससे सब का जीवन सुख से हो सकता है। जितनी राजा प्रजा की बड़ी हानि इन के मारने और मरवाने से होती है, उतनी अन्य किसी कर्म्म से नहीं। इसका निर्णय गोकरुणानिधि पुस्तक में अच्छे प्रकार प्रकट कर दिया है अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इस लिये हम सब लोग स्वप्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया की

न्याय प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े २ उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है उस के उन के राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म्म, प्रजा हित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया पार्लीमेण्ट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्य्यवर्त्तस्य श्रीमान् गवरनर जनरल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय बैल तथा भैंस की हत्या को हटा उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द कर के हम सब को परम आनन्दित करें देखिये कि उक्त गुण युक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध घी और किसानों की कितनी बड़ी हानि होकर राजा प्रजा दोनों की बड़ी हानि हो रही है, और नित्य प्रति अधिक २ होती जाती है। पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म्म और पर हानि अधर्म निश्चत जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस २ से अधिक उपकार हो उस का पालन, वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस जगदुपकारक कार्म करने में समस्त राजा प्रजा को एक सम्मति करे।

(हस्ताक्षर)

(२) विज्ञापनपत्रमिदम् (३७)

सब आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर (ओ३म्) और नीचे (हस्ताक्षर) ऐसा वचन लिखा है, वहीं सही करने का है उस पर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिस के स्वराज्य व देश में ब्राह्मण आदि मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् इतने सौ, हजार लाख व करोड़ मनुष्यों की ओर से मैं अमुक नामा पुरुष सही करता हूं इस प्रकार एक श्रीयुत महाशय प्रधान पुरुष की सही में सर्व साधारण आर्य पुरुषों की सही आजायगी। परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे वह उन से सही लेके अपने पास अवश्य रक्खे। और जो मुसलमान वा ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में दृढ़ता और प्रसन्नता से सही करना चाहें तो कर दें। मुझ को दृढ़ निश्चय है कि आप परम उदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्व उपकारक महापुण्य कीर्त्तिप्रदायक कार्य यथावत सिद्ध हो जायगा।

दयानन्द सरस्वती

चैत्र कृष्णा ६ सं० १९३९ तदनुसार १४ मार्च १८८२ मुम्बई

(१) ※ ओ३म् ※ (३८)

स्वामी ईश्वरानन्दजी आनन्दित रहो—सब यन्त्रालय के पदार्थ और नौकरों पर दृष्टि रखना कि नियमाऽनुसार सब काम होते हैं वा नहीं ॥१॥

२—जब कभी जिस किसी का व्यतिक्रम देखे तो जो शिक्षा करने से सुधर सक्ता हो तो वहीं सुधार देना न माने तो हम को लिखना ॥

३—प्रति अष्टवारे वहां का वर्त्तमान पत्र द्वारा हम को भेजा करना और यथाशक्ति जो कोई पुस्तक छपे उसको दूसरे के साथ मिलकर वा स्वयं शोधा करना ॥

४—और जब कभी तुज को व्यतिक्रम विदित हो, तब, वा जब हम लिखें तब अपने सामने डाक खुलवाना और पुस्तकालय तथा धन, कोश और अन्य पदार्थों की सम्हाल से यथावत् रक्षा करना ॥

५—यावत् प्रबन्धकर्त्ता का व्यतिक्रम कोई विदित न हो तब तक उस के साथ मिलकर उसको सहायता देना और प्रीति प्रेम से यन्त्रालय की उन्नति करते रहना। ५) रुपये मासिक प्रतिमास यन्त्रालय से मिला करेंगे। उन से खान पानादि उचित व्यवहार करना। और जब कभी अधिक व्यय की इच्छा हो तब हम को लिखना ॥

६—सदा व्याकरण पढ़ने में परिश्रम किया करना और नियत समय पर यन्त्रालय का भी काम किया करना ॥

७—शरीर का संरक्षण, प्रातः व्यायाम, भ्रमण, सदा शास्त्रों का चिन्तन करना और जब तक तेरे स्थान में दूसरा निज पुरुष न आवे तब तक कहीं न जाना। धर्म से घरके समान काम किया करना। वैदिकयन्त्रालय से वेदाङ्गप्रकाश के पुस्तक लेकर पढ़ा करना ॥

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती.

शाहपुरा राजमेवाड़ राजपूताना।

(१) ——— (३९)

जो कोई नोट वा विज्ञापन शास्त्रार्थ खण्डन मण्डन और धर्माधर्म विषयों का ज्ञापक हो वह हम को दिखलाये विना कभी न छापना चाहिये। यह मेरे पास भेजा सो बहुत अच्छा किया। जो दिखलाये विना छाप देते तो हम को इसके समाधान में बहुत श्रम करना पड़ता। भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उसका पाण्डित्य है, अन्यत्र यह बालक है। इस को इस बात की खबर भी नहीं है कि इस लेख से क्या २ कहां विरोध होकर क्या २ विपरीत परिणाम होंगे। इसलिये यह नोट जैसा शोध के भेजा है वैसा ही छपवाना। किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु।

उर्दू पत्र ।

(१) ※ ओ३म् ※ (४०)

लाला शादीरामजी आनन्दित रहो—

वाज़ह हो कि ख़त तुम्हारा आया । हाल मालूम हुआ । और तुमने जो टिकट १०॥) के और तीन फ़र्मे नासिक के भेजे सो पहुंचे ख़ातिरजमा रक्खो, हमने इस माह का ऋग्वेद का भी अङ्क देखा । उसमें भी ग़लती बरआमद होती हैं । मगर हां फ़र्मे अख़ीर में बेशक ग़लतियां कम हैं । अगर इसी तरह ज्वालादत्त ख़याल करेगा और काम में दिल लगावेगा तो आयन्दह ग़लती बिलकुल न रहेगी । उसको ताकीद कर दो कि प्रूफ़ को चार पांच दफ़े देखा करे, और एक मात्रा की भी ग़लती न रहा करे,तब छापने का हुक्म दिया करे। प्रूफ़ हमारे ग्रन्थ माफ़िक़ दुरुस्त होजाना चाहिए । अगर वह ज़ियादह शुद्ध न करे तो अशुद्ध भी न करना चाहिए । उसकी नज़र शोधन में बहुत मोटी है। देखो, नासिक के नोट में " छन्दस्युभयथा " ऐसा लिखना चाहिये था कि उसने बजाय इसके " छन्दस्युथा " छपवा दिया है। ऐसा ग़ाफ़िल होना उसको लाज़िम नहीं । अगर वह कहे और पसंद करे कि मैं भाषा नहीं बना सकता सिर्फ़ शोधा करूंगा तो हमको कबूल है । हम भाषा का बनाना उस पर से मौक़ूफ़ कर देंगे, और सिर्फ़ शोधने ही पर रख लेंगे । और जो तनख़्वाह भीमसेन को देते थे यानी ५) उसको भी, बल्कि दो ज़ियादह यानी ७) माहवारी देवेंगे, क्योंकि हम ख़ूब जानते हैं कि वह बजुज़ लिखने और श्लोक बनाने के और कुछ नहीं कर सकता । पस अब उसको तुम बख़ूबी ताकीद करदो कि कोई एक भी ग़लती न रहने पावे । अगर अबकी मर्तबा एक भी ग़लती रही तो हम उस पर बेशक बशुबहा दण्ड करेंगे । और यह भी तहरीर करो कि बनारस में आज कल सब-जज यानी जजमातहत या सदरआला कौन है, जनाब रामकाली चौधरी साहब हैं या और कोई साहब हैं, और हम सब तरह आनन्द में हैं ।

मुकर्रिर यह है कि हम तुम्हारे पास ऋग्वेद व नासिक की शुद्धि अशुद्धि नमूने के तौर पर लिखकर रवाने करते हैं, ज्वालादत्त को देदेना और तुम भी देखना कि किस क़दर ग़लती निकलती हैं ।

आगरा ७ फरवरी ८१ ई०　　　　दयानन्द सरस्वती

उर्दू पत्र ॥

(२) ओ३म। (४१)

मास्टर शादीरामजी-

आप पण्डित ज्वालादत्तजी को खूब समझा देवें कि व्याकरण में कुछ ज़रूरत "नवीनरचना" की नहीं है। जैसे अब नामिक छपता है वैसे ही छपने दो। और नामिकं के बाद कारकीय छपेगा। और पण्डित ज्वालादत्त के शोधने में बहुत ग़लती रहती हैं। उनको ताकीद करो कि खूब ग़ौर से शोधे ताकि ग़लती न रहे।

आगरा २२ दिसम्बर ८१ ईस्वी दयानन्द सरस्वती।

(१) (४२)

पण्डित सुन्दरलाल असिस्टेन्ट पोस्टमास्टर जनरल प्रयाग आनन्दित रहो-

मैं आप परोपकारप्रिय धार्मिक जनों को सब लोगों के उपकारार्थ गाय, बैल और भैंस की हत्या के निवारणार्थ, एक तो सही करने का और दूसरा जिसके अनुसार सही करनी करानी है दोनों पत्र भेजता हूं। इसको आप लोग उत्साहपूर्वक स्वीकार कीजिये, जिससे आप महाशय लोगों की कीर्त्ति इस संसार में सदा विराजमान रहे। इस काम को सिद्ध करने का विचार इस प्रकार किया गया कि दो करोड़ से अधिक राजे महाराजे और प्रधान आदि महाशय पुरुषों की सही कराके आर्यावर्त्तीय श्रीमान् गवरनर जनरल साहब बहादुर से इस विषय की अर्ज़ी करके उपरिलिखित गाय आदि पशुओं की हत्या को छुड़वा देना। मुझ को दृढ़ निश्चय है कि प्रसन्नता पूर्वक आप लोग इस महोपकारक काम को शीघ्र करेंगे। अधिक प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि जहां २ उचित समझें वहां २ भेजकर सही करा लीजिये। पुनः नीचे लिखे स्थान में रजिस्टर कराके भेज दीजिये (लाला रामशरणदास रईस मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ, महल्ला कानूगोयान)। अलमतिविस्तरेण धर्मिवरशिरोमणिषु ॥

चैत्र कृष्ण ८ चन्द्रवार संवत् १९३८। ह० दयानन्द सरस्वती ॥

(१) ओ३म (४३)

प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदान आनदित रहो-

विदित हो कि ता० ४ सेप्टेम्बर का लिखा हुआ पत्र तुम्हारा पहुंचा, समाचार ज्ञात हुए। टैप के विषय में एक पत्र आज भेज चुके हैं उसके

अनुसार प्रबन्ध करना। जो कहीं पद छूट जाता है वह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है। हम प्रायः इस बात में ध्यान नहीं देते क्योंकि यह सहज बात है। अच्छा, जहां कहीं रह जाया करे तुम देख लिया करो कि किस २ मन्त्र में क्या २ छूटा और यहां लिख के भेज दिया करो।

उदयपुर नौलखाबाग़ सम्वत् १९३९. दयानन्द सरस्वती।

---

(२) ओ३म् (४४)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

पत्र तुम्हारा आया समाचार विदित हुआ। अब तुम बहुत शीघ्र नया टैप मंगाओ, नहीं तो सत्यार्थप्रकाशादि सब पुस्तक बिगड़ जायेंगे। चाहे दोनों ओर से मंगाओ पर शीघ्र मंगाओ। हम लिख चुके हैं कि गत महीनें में कितने फर्मे छपे और आख्यातिक तथा पारिभाषिक आदि पुस्तक मंगाये हैं क्यों नहीं भेजे वा उत्तर दिया? अब शीघ्र भेजो। और कोश के विषय में जो तुमने लिखा सो हम ऐसा कोश नहीं बनाते हैं कि सब कोशों से सब शब्दों का संग्रह करते हों। किन्तु उणादि के ऊपर अनुकूल सुगम संस्कृत में वृत्ति बनाई है। उस के प्रत्ययों के प्रसङ्ग में जो अन्य शब्द आये हैं वे भी लिख दिये हैं। सो बनके तो तैयार होगया है। सूचीपत्र बाकी है। निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है। और निरुक्त तथा ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना। और ज्वालादत्त के पास भाषा बनाने के लिये अब भेजें वा ऐसा ही रक्खोगे। ५ भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के फारम भेजे थे सो पहुंच गये। परन्तु सत्यार्थप्रकाश अक्षरों के घिस जाने से अच्छा नहीं छपता।

मि० मार्ग शुदी १० मंगल १९३९। दयानन्द सरस्वती।

---

(३) * ओ३म् * (४५)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

हम उदयपुर से फाल्गुन बदी ७ गुरुवार के दिन घड़ी रात से राज की चार घोड़े की डाक बग्गी में चल के शाम के ५ बजे नीमाहेड़े पहुंच कर ९ बजे रात के चित्तौड़ में पहुंच गये, रेल में बैठकर। यहां तीन दिन ठहरेंगे पश्चात् जहां जायंगे तुम को ख़बर देंगे। अब उदयपुर का वर्त्तमान लिखते हैं। जब से हम उदयपुर में पहुंचे उस दिन से बहुत आनन्दित रहे। और नित्यप्रीति श्रीमान् महाशयों की बढ़ती ही गई। मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम पर्यन्त राजधर्म सब याथातथ्य पढ़ लिये। अन्य बहुत से महाभारतस्थ विदुरप्रजागर

तथा ६ शास्त्रों के मुख्य २ विषय और चलते वक्त थोड़ासा व्याकरण का विषय और अन्वय की रीति भी पढ़ली। जैसा कि राजाओं को सत्यप्रतिज्ञ और पुरुष परीक्षक और गुणज्ञ तथा स्वगुण स्वदोष के मानने वाले होने चाहियें, वैसे श्रीमान् महाशयार्य्यकुलदिवाकरों को मैंने देखा। बहुत से राजा मुझ से मिले परन्तु जैसी प्रसन्नता मेरी और उदयपुराधीश की परस्पर रही और आगे के लिये भी दृढ़ रहेगी वैसी अन्य से बहुत न्यून सम्भावना है। अब जिस समाचार को तुम पूछा करते थे वह निम्नलिखित जानो। संस्कृत के अपने जो कि वेदाङ्गप्रकाशादि हैं उनका प्रचार राजकीय पाठशाला तथा चारणों की पाठशाला में कर दिया है।

वो जो प्रसिद्ध वा रहस्य में राजधर्म, ईश्वर तथा वैदिकधर्म प्रचार, और शरीर, राजनीति आदि विषयों में उपदेश मैंने किया है उसका आचरण बहुत सा कर लिया और करने की प्रतिज्ञा भी की है।

गत पञ्चमी मङ्गलवार के दिन सायंकाल ७ बजे बड़े २ सर्दार तथा कामदारों की सभा बुला के स्वीकारपत्र जो कि मेरठ में हम ने रजिस्टर कराया था, उस में से एच. एच. कर्नल आलकाट साहब, तथा एच. पी. ब्लैवस्टकी, मुन्शी इन्द्रमणी को पृथक् कर दिये, और डाक्टर विहारीलालजी का शरीर छूट गया, इनके ठिकाने में अन्य पांच सभासद् और बढ़ा दिये अर्थात् प्रथम अठारह थे, अब तेईस होगये। उन में से सभापति श्रीमान् आर्य्य-कुलदिवाकर श्रीयुत महाराणाजी और उपसभापति लाला मूलराज एम. ए. मन्त्री कविराज श्यामलदासजी आदि नियत हुए हैं। उसकी एक प्रति श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाकर सब ने माननीय प्रतिष्ठित माना है। यह बात महा लाभदायक और बहुत बड़ा काम देगी। अब सरकारी राज में भी इसकी रजिस्टरी करालें, सो रजवाड़ों में और अंगरेज़ी राज में भी बड़ा माननीय होगा। और राजकीय यन्त्रालय उदयपुर में छपकर सभासदों के पास एक २ प्रति पहुंचेगी और ज़ियादह छपेंगी तो अन्य योग्य पुरुषों के पास भेज दी जायंगीं। यह तुम्हारे पास इसलिये भेजते हैं कि अपने परामर्श, अनुमति और महाराणाजी को धन्यवाद लेखपूर्वक-पत्र अन्त में, और आदि में यह स्वीकारपत्र अच्छे काग़ज़ पर और अच्छे टैप में छपवाकर योग्य २ वेद-भाष्य के ग्राहक और भारतमित्रादि समाचारपत्र और मुख्य २ पुस्तकालय में भेजदो। और जब छप चुकेगा तब हम भी लिखेंगे कि फलाने २ के पास भेजदो।

और एक पत्र हमारे पास आने वाला है कि उसको एक अच्छे कागज पर छापकर तुमको सब आर्य्यसमाजों के पास भेजना होगा। और वे श्रीमान्

महाराणाजी के पास भेज देंगे और कुछ २ अपने आनन्द प्रदर्शक बातें लिख कर भेजेंगे तो अच्छा होगा।

बारहसौ रुपये कलदार धर्मार्थ वेदभाष्य के सहाय में, एक दुशाला मुझको, तथा पांचसौ रुपये कलदार आर्य्यसमाज फीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये, और सौ रुपये कलदार वहां जो लड़कियां कसीदा का काम करती हैं उनको पारितोषिक के लिये; और सौ रुपये कलदार और साधारण दुशाला रामानन्द ब्रह्मचारी को दियां। अर्थात् उन्नीस सौ कलदार रुपये और दो वस्त्र प्रदान किये।

इन बारहसौ रुपयों को उन्हीं के पास रक्खे हैं। इस प्रयोजन के लिये कि इसी मुख्य स्थान से प्रधान वैदिकधर्म प्रचार होवे और उसको पूर्ण सहाय मिले। इसका नाम वैदिकनिधि रक्खा है। और मेरे नाम से स्थापित हुआ, ऐसा खाता राजकोष में और महद्राजसभा में लिखित होगया। इत्यादि सब उत्तम बातें वहां की यात्रा से हुई जिसको तुम सुनकर बड़े आनन्दित होगे इसलिये प्रथम तुमको लिखा। इसके आगे जो २ वर्त्तमान होगा तुमको लिखा जायगा और गोरक्षा में भी पूरा सहाय निश्चत मिलेगा।

चितौड़गढ़
मि० फाल्गुन बदी १० रविवार सं० १९३९.
तदनुसार ता० ४ मार्च सन् १८८३.
(दयानन्द सरस्वती)

---

(४) ॐ ओ३म् ॐ (४६)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

१—पत्र तुम्हारा आया वर्त्तमान विदित हुआ। जैनियों की पुस्तक का बंडल प्राप्त होने से निश्चय हुआ।

२—ईश्वरानन्द कहीं अन्यत्र चला गया है। वह बड़ा चंचल है। बहुत लोगों के कहने से हमने दीक्षा दी और तुम लोग भी प्रसन्न हुए परन्तु प्रसन्नता का काम करे जब ठीक है।

३—कम्पोजीटर के निकालने से बहुत हानि हुई। परन्तु जैसे बने उन सब को जो कि पूर्व थे रखलो। किसी का ॥) आना किसी का १) रुपया अधिक बढ़ाकर रख लो क्योंकि वेदाङ्गप्रकाश और सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छपना चाहिए।

४—तुमको हम निश्चित कहते हैं कि बाहर का काम किसी का मत छापो। सत्यार्थप्रकाश और वेदाङ्गप्रकाश के छपने में देर होने का कारण

बाहर का काम है। और देशहितैषी और भारतसुदशाप्रवर्त्तक और प्रयाग-समाचार सबका छापना बन्द करदो और उनको लिख दो कि तुम्हारी इच्छा हो जहां छपवाओ। क्योंकि हमने पहिले ही लिखा था कि जब हमारे निज काम में हर्कत होगी उसी वक्त हम बन्द कर देंगे। सो हर्कत बहुत होती है क्योंकि यह यन्त्रालय रोजगार के वास्ते नहीं है, केवल सत्यशास्त्रों को छापकर प्रसिद्ध करने के लिए है न कि व्यापार के लिए। यहां छापने को बहुत है जितना चाहो उतना छापो। इन समाचार आदि के छापने में समय खोना कुछ उचित नहीं। हमको आशा है कि तुम भी इस बात को प्रसन्न कर लोगे क्योंकि तुमको प्रसन्न करना अवश्य है और पण्डित जी की यही प्रसन्नता है।

५—तुम्हारे कल के पत्र में पुस्तकों का बंडल लिखा हुआ नहीं आया है। आवेगा तब देख करके मान्यपत्र पर यदि तुम्हारा लेख मानने योग्य होगा तो रहने देंगे नहीं तो नहीं। और वैदिकनिधि के विषय में तुमने लिखा सो ठीक है क्योंकि उन्हीं लोगों के दस्तख़त से छपना ठीक है और धन्यवाद पत्र तथा मान्यपत्र पर प्रयागसमाज के प्रधान और मन्त्री के दस्तख़त होना चाहिए।

६—ऋग्वेद के पत्रे १५७८ से लेके १६९७ तक पण्डित ज्वालादत्त को भाषा बनाने के लिए देदेना। और उसने १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनाना स्वीकार किया है सो बराबर बनाया करे।

सि० वै० शु० ३ सं० १९४० ह० दयानन्द सरस्वती.

(५) ———— (४७)

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो—

हम ज्येष्ठबदि ४ शनिवार के दिन शाहपुरे से चलकर ज्येष्ठबदि १० गुरुवार के दिन जोधपुर पहुंचकर फ़ैजुल्लाखांजी के बाग़ में ठहरे हैं। वेदभाष्य के टाइटलपेज पर जोधपुर का नोटिस छाप देना। और देशहितैषी को भी हमने कह दिया है कि वैदिकयन्त्रालय को मत भेजो और प्रयागसमाचार भी बन्द करदो। यदि बन्द न करोगे तो हम दंड कर देंगे क्योंकि बहुत वक्त हम लिख चुके हैं। सभा में जो बाहर के काम के छपने की अनुमति हो तो स्वीकार न किया जावे। ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाइटलपेज पर छाप देना। श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह जी वर्मा ने ३०) रु० माहवारी सदा के लिए ज्येष्ठबदि ४ शनिवार के दिन से वैदिकधर्म उपदेशकों के लिए देना स्वीकार कर लिया है। और २००) रुपये चित्तौड़ी कि जिसके १५०) कलदार होते हैं वेदभाष्य के सहाय में प्रदान किए। और मनुस्मृति के सप्तम तथा अष्टम, नवमाध्याय जो कि राजधर्मविधायक है पढ़कर

योगशास्त्र वैशेषिक और न्यायशास्त्र के मुख्य विषय भी पढ़ चुके। परन्तु न्यायशास्त्र, कुछ कम रह गया, जोधपुर को शीघ्र आने से। और हम लिख चुके हैं कि वेदभाष्य के ग्राहकों का रजिस्टर जो कि तुम्हारे पास वर्त्तमान है नक़ल करके भेजदो और टाइपशीघ्र मंगवाओ। और यदि १५०) रु० सेवकलाल कृष्णदास ने नहीं दिये हों तो तुम्हारे पास से भेजदो और टाइप शीघ्र मंगवाओ। इसके लिये हम पण्डितजी को लिख देंगे। वह इस बात में तुम को कुछ नहीं कहेंगे और तुम भी लिखदेना कि स्वामीजी की आज्ञा से हमने भेजे हैं। और रामानन्द के कहने से विदित हुआ कि-लखनऊ का कम्पोजीटर दुष्ट है, ऐसे आदमियों को यन्त्रालय में नहीं रहने देना चाहिये। और यह पत्र बाबू विश्वेश्वरसिंहजी को भी सुना देना। और जो छापने को सत्यार्थप्रकाश हैं उसको १ मास पहिले हमको लिख भेजोगे तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पत्र पहुंचेंगे। और यहां का विशेष समाचार आगे लिखा जायगा।

मि० ज्येष्ठबदि १० सं० १९४०
जोधपुर।

ह० (दयानन्द सरस्वती)

---

(६) ओ३म् (४८)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो-

आर्यराज वंशावली के पत्र तुमने भेजे सो पहुंचे। उसी समय हम सत्यार्थप्रकाश १२ समुल्लास को भेजना चाहते थे इसलिये हम शोध नहीं सके। और तुम इसका जोड़मात्र शोध लेना। जो राजाओं के आयु के वर्ष, मास, दिन हैं उनको वैसे ही रखना क्योंकि अन्य पुस्तक से भी हमने इसको मिलाया है जो कि यहां जोधपुर में एक मुन्शी के पास था। और इसके साथ मोहनचन्द्रिका १९-२० किरण भेजते हैं परन्तु यह भी अशुद्ध छपा है इसलिये नीचे और ऊपर के जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना, आयु के वर्ष, मास, दिन नहीं। दिन वैसे ही रहने देना जैसे कि हैं। २७२ से लेके ३१९ तक १२ समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिये भेजते हैं। जो जोधपुर के मुन्शी की पुस्तक से मिलाई है वह भी भेजते हैं।

मिती आ० बदी १ सं० १९४०
जोधपुर राज मारवाड़

(दयानन्द सरस्वती)

---

(७) (४९)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

मैनेजर भारतमित्र श्रीकृष्ण खत्री ने एक आर्य्यपंचांग नामक ग्रन्थ बनाना चाहा है। उसमें आर्य्यधर्म्म के प्रयोजन जिस २ स्थान पर समाज हैं जिस दिन आरम्भ हुआ और जिस दिन वार्षिक उत्सव होता है और मन्त्री का नाम उसमें लिखना चाहते हैं सो हमने तुम्हारा नाम लिख दिया है। यदि वह तुम्हारे पास पत्र भेजे तो जहां तक तुम जानते हो पूर्वोक्त विषयों में सहाय देना। और जो उन्होंने समाजस्थ पुरुषों की संख्या और हमारा इतिहास भी लिखना चाहा है सो तो अब इस समय उनको नहीं मिल सकता। और समाजस्थ पुरुषों की संख्या बतलाने में कुछ लाभ नहीं। इसलिए पूर्वोक्त विषयों में सहाय मांगें तो देना क्योंकि प्रसिद्ध समाचार का सम्पादक है, और उसकी प्रीति भी अधिक दीखती है, चाहे स्वार्थ वा परमार्थ से।

मिती भाद्रवदी ३० सम्वत् १९४०
जोधपुर मारवाड़.

(दयानन्द सरस्वती).

---

(८) * ओ३म् * (५०)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

आज संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं। सम्भाल के छपवाना। और एक तीन पत्र का एक पत्र है, वह जिस प्रकार जोड़ा है उसी प्रकार छपेगा, वह गड़बड़ न हो इसलिये जोड़ा है। इसीलिये तीनों का एक अंक रक्खा। और हमने भीतर प्रतीक के अंक पृष्ठांक अर्थात् फलाना मन्त्र वा फलाने कर्म फलाने पृष्ठ में करना अपने लिखे पृष्ठों के अनुसार अंक लिखे हैं, परन्तु लिखे और छपे एक से पृष्ठांक नहीं होंगे इसलिये छपे पृष्ठों के अनुसार वे पृष्ठांक बना लेने। और विषय सूचीपत्र भी छपे पीछे बनेगा। और एक सामग्री सूचीपत्र अर्थात् फलाने संस्कार में फलानी फलानी सामग्री संग्रह की जायगी, जैसाकि इस संस्कारविधि में लिखा है। और अवकाश मिला तो सामग्री सूचीपत्र तो हम ही यहां से लिख भेजेंगे। अब हम यहां से अमावस्या के दिन रवाना हो के आश्विन सुदी ४ चौथ को मसूदे में पहुंच जायंगे, यदि वर्षा का प्रतिबन्ध नहीं हुआ। और जो प्रतिबन्ध हुआ तो तुम को चिट्ठी लिख देंगे। और सत्यार्थप्रकाश जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से

चले पूर्व अथवा मसूदे पहुंचते समय भेज देंगे। और मुम्बई से टैप आया वा नहीं। और यदि नहीं आया तो प्रत्युत्तर भी आया वा नहीं।

मिती आश्विनबदी ८ सोमवार सम्वत् १९४० (दयानन्द सरस्वती)
जोधपुर राज मारवाड़.

---

(९) * ओ३म् * (५१)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेके ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते हैं सम्भाल लेना। आश्विन बदी ८ सोमवार सम्वत् १९४० को संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं पहुंचे होंगे, और पहुंचने पर रसीद भेज देना। बाक़ी तुम्हारे पत्रों के उत्तर वा समाचार पश्चात् लिखेंगे॥

मिती आश्विनबदी १३ शनि सम्वत् १९४० दयानन्द सरस्वती.
जोधपुर राज मारवाड़.

---

(१०) * ओ३म् * (५२)

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

विदित हो कि कई एक पत्र भेज चुके हैं। एक का भी प्रत्युत्तर नहीं मिला, क्या कारण है? तुम्हारा शरीर तो स्वस्थ है? जैसा हो वैसा शीघ्र लिखो। और भेजे हुए पत्रों का भी उत्तर भेजना। आज अत्यन्त अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिये निकाल दिया है। उसको मुख न लगाना, लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान न देना॥

मार्ग बदी ५ रवि
उदयपुर. दयानन्द सरस्वती

---

(१) * ओ३म् * (५३)

पण्डित गोपालरावहरि आनन्दित रहो—

मैं आशा करता हूं कि जो २ बातें करनी आपके लिये नीचे लिखता हूं, सो २ यथावत् स्वीकार करेंगे। (१) जो मीमांसक उपसभा नियत की गई है उसके पांच सभासद् निश्चित् किये गये हैं। एक आप, द्वितीय बाबू जी, तृतीय लाला जगन्नाथ प्रसाद, चतुर्थ लाला रामचरण, पंचम लाला निर्भयराम

और उसकी अनुपस्थिति में क्रमशः यथा आप के लाला रामनारायणदास मुख्तार, लाला हरनारायण, लाला हितमनीलाल, लाला कालीचरण और लाला निर्भयराम के कोई पुत्र अर्थात् तीनों में से एक जो उपस्थित हो, नियत किये गये हैं॥

(२) जहां तक बनें अवश्य आप उपस्थित हों। और व्याख्यान भी समाज में दिया करें। (३) जो मासिक पुस्तक निकलता है वह भी आपके हाथ से बनेगा, अथवा बनने पर शुद्ध कर देंगे। इसी प्रकार प्रवन्ध करना अच्छा होगा। इति—

आषाढ कृष्ण ८, सम्वत् १९३७

दयानन्द सरस्वती

(२) ——— (५४)

पण्डित गोपालरावहरिजी आनन्दित रहो—

आज एक साधू का पत्र मेरे पास आया। वह आपके पास भेजता हूं। साधु का लेख सत्य है। परन्तु आपने चितौड़ सम्बन्धी इतिहास में न जाने कहां से क्या सुन सुनाकर लिख दिया। उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही वार समागम हुआ। आप ने प्रतिदिन दो वार होता रहा, लिखा है। आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं। यद्यपि आप सत्यप्रिय और शुद्ध-भाव-भावित ही हैं और इसी हित-चित्त से उपकारक काम कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक २ विदित नहीं, तो उसके लिखने में कभी साहस मत करो। क्योंकि थोड़ासा भी असत्य होजाने से सम्पूर्ण निर्दोशकृत्य बिगड़ जाता है। ऐसा निश्चय रक्खो, और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो। वैशाख शुक्ल २ सम्वत् १९३९। स्थान शाहपुरा।

(दयानन्द सरस्वती)

(१) ——— (५५)

श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा श्रीप्रतापसिंह जी आनन्दित रहो— यह पत्र बाबा साहब को भी दृष्टि गोचर करा दीजियेगा।

मुझ को इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्य आदि में वर्त्तमान,आप और बाबा साहब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं। अब कहिये उस राज्य का, कि जिसमें सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं? उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं। सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीन महाशयों पर निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्य, संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान

देते हैं। यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुनकर सुधार लेवें, जिससे मारवाड़ को क्या, अपने आर्य्यावर्त्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्मके भी बहुत कम चिरञ्जीवशी आयु होते हैं। इसके हुए विना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवें, उतनी ही देश की उन्नति होती है। इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिये। आगे जैसा आप लोगों की इच्छा हो, वैसा कीजियेगा।

जोधपुर
आश्विन वदी ३ शनिवार सं० १९४० ह० (दयानन्द सरस्वती)
(२२ सितम्बर सन् १८८३).

---

(१) * ओ३म * (५६)

भारतमित्र संपादक महाशय निकटे निवेदनम्।

महाशय, आपके संवत् १९४० आषाढ़ शुदी ८ गुरुवार के छपे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप पत्र छपवाया है। उस लेखक का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नहीं है। परन्तु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्नमात्र ही किया है। अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा। अर्थात् उत्तर उस बात का होता है जो किसी वेदवचन पर भ्रांतपन दिखलाता तो उसका उत्तर उसी समय दिया जाता। जैसे कोई कहे कि यह १०००)एक हज़ार रुपयों की थेली सच्ची नहीं। दूसरे ने उससे पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र से थेली को झूठी मान सकता हूं। जब तक तुम झूठा रुपया इसमें से एक भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते, तब तक थेली को झूठी नहीं मानूंगा। वैसा ही मिष्टर ए. ओ. ह्यूम साहेब और जिसने आपके पत्र में छपाया है इन दोनों महाशयों का लेख है। यहां उनको योग्य था और है कि किसी एक वा अनेक मन्त्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद, अध्याय, मन्त्र, संख्या पूर्वक लिखकर पश्चात् कहते कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नहीं हैं, तो प्रत्युत्तर के योग्य प्रश्न होता। अब भी यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें, नहीं तो कुछ भी नहीं है; किन्तु इसमें इतनी बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है कि वेदों में मतभेद क्यों हैं। अब देखिये यह भी इनकी गोलमाल बात है। क्योंकि वेदों में किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मत भेद हैं, हां, विद्याभेद से कथन का भेद होना तो उचित ही है। जो व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष,

वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प, और पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदों में हैं। इनके संकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न २ हैं; जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के संकेत, परिभाषा और पदार्थ विज्ञान पृथक् २ होते हैं वैसे इन सब विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाशक मंत्र भी पृथक् २ अर्थ के प्रतिपादक हैं। यदि इन्हीं को मतभेद कहते हैं तो प्रश्नकर्त्ता का कथन असंगत है और जो दूसरे प्रकार के मत भेद मानते हैं तो उनका कथन सर्वथा अशुद्ध है। इसलिये प्रश्नकर्त्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से जो कोई एक मंत्र भी भ्रांत प्रतीत होवे वह आपके पत्र में मिष्टर ए. ओ. ह्यूम साहेब छपवावें। उनका उत्तर भी आपही के पत्र में उचित समय पर छपवा दिया जायगा। और उन को वेद के निर्भ्रान्त होने के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका को देख लेवें। यदि उनके पास न हो तो वैदिकयंत्रालय प्रयाग से मँगा कर देखें। और जो उनको आर्यभाषा का पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुनें। इस पर जो उनको शंका रह जाय तो मुझ से समक्ष मिलके जितनी शंका हों उन सब का यथावत् समाधान लेवें, क्योंकि पत्रों से शंका समाधान होने में विलम्ब होता और अधिक अवकाश की भी अपेक्षा है और मुझको वेदभाष्य बनाने के काम से अवकाश न मिलने के कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है। और जो उन्होंने यह लिखा है कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर की प्रेरणा युक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके, मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूं परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं, इस अभिप्राय से कि यहां तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुँच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे; इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं और वह अर्थ सब सज्जनों के दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगा भी। यदि कहीं भ्रांति हो तो उक्त साहेब प्रकाशित करें। बड़े शोक की बात है कि आज पर्यन्त एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सका है फिर भी इनका भ्रम दूर नहीं हुआ। ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे इससे कुछ भी हानि नहीं होसकती। और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रांतत्व यथावत् सिद्ध है। यदि इस मेरे बनाए भाष्य में मिस्टर ए. ओ. ह्यूम साहेब को भ्रम हो तो इसमें से भ्रांति मत्त्व किसी मन्त्र के भाष्य द्वारा आपके पत्र में छपा देवें, मैं उत्तर भी आपही के पत्र द्वारा देऊंगा। और जो थियोसोफिष्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें, इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि वे अनीश्वरवादी बौधमतावलंबी होकर भूत, प्रेत, और चुटकलों के मानने वाले हैं। बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्या सिद्ध परमात्मा को न मानकर भूत, प्रेत, मृतकों में फस कर और भोले मनुष्यों को फसा अपने को सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी

अनुचित बात है । इनको तो नास्तिक मत जो कि ईश्वर को न मानना है वही प्रिय लगता है । परन्तु इसमें इतनी ही न्यूनता है कि भूत प्रेतों ने इनको घेर लिया । सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रम जाल भूत प्रेतों और बन्ध्या पुत्र वत्कुतु हूंबीलाल सिंह आदि में क्यों न फसेंगे। बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने सौ इतने हजार मनुष्यों को मिष्टर एच. ए. करनेल ओलकाट साहब ने रोग रहित किया । यदि यह बात सच हो तो मुझको क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते, और मेरे सामने कि जिसको मैं कहूं उस एक को भी नीरोग करदें तो मैं थियोसोफीष्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद देऊं । इसमें मुझको निश्चय है कि जैसे एक थियोसोफीष्ट दंभ के मारे लाहौर में अपनी अंगुली कटवा के अंग भंग होगया कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे । और करामात कुछ भी काम न आवेगी। मैं प्रसिद्धी से कहता हूं कि यदि उनमें कुछ भी अलौकिक शक्ति वा योगविद्या हो तो मुझको दिखलावें, मैंने जहां तक इनकी लीला सिद्धि और योग विषयक देखी है वह मानने के योग नहीं थी । अब क्या नई विद्या कहीं से सीख आए ? मुझको तो यह विषय निकम्मा आडंबर रूप दीखता है । अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥

श्रावण वदी ४ संवत् १९४०, दयानन्द सरस्वती
तनुसार २३ जुलाई सन् १८८३ । जोधपुर ।

---

(२) * ओ३म् * (५७)

श्रीयुत भारतमित्र संपादक समीपेषु ।

महाशय, आप के संवत् १९४० मिति श्रावण शुदी ६ गुरुवार के दिन के छपे हुए पत्र में जो विविध समाचार के दूसरे कोष्ठ में यह छपा है कि मुसलमानों के मज़ब का मूल अथर्ववेद है, सो बात है क्योंकि उस के नाम निशान का एक अक्षर अथर्ववेद में नहीं है । जो शब्द कर्तृम अल्लोपनिषद् नामक जो कि मुसलमानों की पादशाही के समय किसी थोड़ा सा संस्कृत और अरबी फ़ारसी के पढ़ने वाले ने छोटा सा ग्रन्थ बनाया है है वह वेद, व्याकरण, निरुक्त के नियमानुसार शब्द अर्थ और संबंध के अनुकूल नहीं है। और अल्ला, रसूल, अकबर आदि शब्द चारों वेदों में नहीं हैं । किन्तु जो अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है उस में भी यह उपनिषद् तो क्या किन्तु पूर्वोक्त शब्द मात्र भी नहीं है, पुनः जो कोई इस बात का दावा करता है वह अथर्ववेद की संहिता जो कि बीस काण्डों से पूर्ण है अथवा उसके गोपथ ब्राह्मण में एक शब्द भी दिखला देवे वह कभी नहीं दिखला सकेगा। यदि ऐसा होता तो उस पुरुष का कहना भी सत्य होता

अन्यथा कथन सच क्योंकर होसकता है ? कहां राजा भोज कहां गांगा तेली ? वेदों के आगे यह ग्रन्थ ऐसा है कि जैसे अमूल्य रत्न के सामने भूडा। यही एक बात नई नहीं है किन्तु स्वार्थी लोगों ने वेदों के नाम पर ऐसे २ निकम्मे बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जिन का मिथ्यात्व वेद के देखने से यथावत् विदित होता है। यदि बालादत्त शर्मा हेडमास्टर रियास्त टिहरी गढवाल की इच्छा............... जाने या शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो तो इस बात के लिये यहां सब दिशाओं के दरवाजे खुले हैं। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।

(३) ओ३म् (५८)

श्रीयुत मनोहरदास खत्री सम्पादक भारतमित्र आनन्दित रहो—आप ने मेरे भेजे पत्र को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया उसका उपकार मानता हूं। परन्तु शेष विषय भी छापने के योग्य जानकर मैंने लिखा था, क्योंकि इस पूर्वपक्ष के सम्बन्धी थियोसोफीकल सुसायटी के प्रधान हैं, इसीलिये यह विषय लिखा था। और मैं आपको सुहृदभाव से लिखता हूं कि यदि आप अपने भारतमित्र समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करनल ओलकाट आदि के करामात वा मिसमिरेजन से अनेकों के रोग निवारण आदि नितान्त मिथ्या विषयक भी न छापें, नहीं तो समाचार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। अब थोड़े समय में करनेल ओलकाट लाहौर गये थे। उनका रोग निवारणदि सामर्थ्य अत्यन्त झूठ बड़े २ बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा कि इन का यह सब ऊपर का ढोंग है। और जितना व्यवहार बाहर वा भीतर का थियासोफीस्टों का मै जानता हूं इतना आर्य्यावर्त्तीय लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जब इन लोगों ने झूठ दांभिक मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही मैंने नहीं दी तभी से वे अपना प्रपंच पृथक् करने लगे। और मैं उन से पृथक् होगया; अस्तु, थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे एक श्रीकृष्ण खत्री ने ता० २८वीं जुलाई सन् १८८३ को लिखकर हमारे पास भेजा है और उन्हों ने बहुत से सनातन आर्य धर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पचांग बनाने के लिये मुझ से सहाय चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी। जिस पत्र पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है इसलिये मैं आप से पूछता हूं कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव वाले हैं ओर जैसा उन ने लिखा है कि इसमें भारतमित्र संपादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इनको योग्य समझते हैं। यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझ को प्रत्युत्तर लिखये तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जायगा और जो एक पत्र बहुत दिन हुए मैंने लिखा था जिस में गोरक्षार्थ अर्जी देने का

मंसोदा वहां के वकील बारिस्टरों से पूछके आप लिखें उस का क्या हुआ ? अब उस में अधिक विलंब करना उचित में नहो समझता। यहां जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जायगा।

(१) ———— (५९)

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमार्हायै श्रुतशास्त्रविद्याभ्यासापन्नायै श्रीयुतरमायै दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्।

शमत्रास्ति। तत्रत्यं भवदीयमेधमानं च नित्यमाशासे।

अभ्यस्तसंस्कृतविद्याया भवत्याः शुभां कीर्त्ति निशम्योत्पन्नस्वान्तानन्देन मया श्रीमतीन्प्रति लेखद्वाराभिप्रायं प्रकाश्यैवमेव भवत्या अभिप्रायं विज्ञातुमिच्छामि सद्यः स्वाभिप्रायविज्ञापनेन मामलङ्करोतु।

इदानीमग्रे च भवति किं किं कर्त्तु चिकीर्षति। किं यथा लोकश्रुतिरस्ति सा ब्रह्मचारिणी वर्त्तत इतीदमेवं विद्यते न वा। सा यत्र कुत्र जनतायां सुशोभितं शास्त्रोक्तलक्षणप्रमाणान्वितं विद्वाह्लादकरं वक्तृत्वं करोतीत्ये तत्तथ्यं न वा। श्रुतं मया सा स्वयंवरविधिना विवाहाय स्वतुल्यगुणकर्म्मस्वभासहितं कुमारं पुरुषोत्तममन्विच्छतीति सत्यमाहोस्विन्न। किमेतदकृत्वा ब्रह्मचर्य्ये स्थातुमशक्यमस्ति।

यथाऽऽर्य्यावर्त्तीयः सत्यो विदुष्यो गार्ग्यादयः कुमार्य्यो ब्रह्मचर्य्ये स्थित्वा स्त्रीजनादिभ्यो यावान् सुखलाभः प्रापितस्तथा ता ऽ न् विवाहे कृतेऽनेकप्रतिबन्धकप्राप्त्या प्रापितुमशक्यः। एवं सत्यपि स्वसमानवरं पुरुषं प्राप्य विवाहं कृत्वा यथाऽनेकाः स्त्रियः सन्तानोत्पत्तिपालनस्वगृहकृत्यानुष्ठाने प्रवर्त्तन्ते तथैव भवत्या इच्छास्ति वा पुनरपि कन्यकाभ्योऽध्यापनस्य स्त्रीभ्यः सुशिक्षाकरणेच्छास्ति। श्रीमती वंगदेशनिवासं कृत्वाऽन्यत्र यात्रां न करोति किमत्र कारणम्। यावदुपकारः सर्वत्र गमनागमनेन जायते न तादृगेकत्र स्थिताविति निश्चयो मे।

यद्यत्रागमनाभिलाषास्ति चेत्तर्ह्यागम्यतां यावानस्यां यात्रायां मार्गे धनव्ययो भविष्यति तावान् भवत्या अत्र प्राप्तेऽवश्यं लप्स्येत। यद्याजिगमिषाऽत्र वर्त्तते तर्हि ततो गमनात्प्राक् पत्रद्वारा समयो विज्ञाप्यतामतोऽत्र भवत्याः स्थित्यर्थं स्थानादिप्रबन्धः स्यात्। यदि श्रीमत्युपदेशाय सर्वत्र यात्रां चिकीर्षेत्तर्ह्यत्तत्स्थानादिनिवासिन आर्य्या भवत्याः सर्वत्रार्य्यावर्त्तयात्रायै योगक्षेमाय च धनं दातुं शक्नुवन्ति नात्र काचिच्छङ्कास्ति।

यदि भवती पत्रं प्रेषयेदथवाऽऽगच्छेत्तर्हि निम्नलिखितस्थानस्य सूचनया पत्रं भवतीवाऽऽगन्तुमर्हतीत्यलमतिविस्तरलेखेन विदुषीं प्रति।

रसरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे आषाढस्य शुभे दले।
षष्ठ्यां शनौ शिवं पत्रं लिखितं मान्यवर्द्धकम्॥

(मेरठ छावनी वाबू छेदीलाल गुमास्ते कमसरयट के द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती) जी के पास पहुंचे। परन्तु इतना लिखना बहुत है कि (मेरठ स्वामी दयानन्द सरस्वती) बराबर पहुंचेगा।

(२) ——— (६०)

श्रीमदनवद्याभ्यस्तसुविद्यालङ्कारपरिशोभितायै भारतवर्षीयेदानीन्तनस्त्रीजनानां निवारितमूर्खत्वादिकलङ्कदार्ष्टान्तस्वरूपायै सत्वसौजन्यार्द्रतासभ्यार्य्यविद्वद्वर्य्यस्वभावान्वितप्रकाशितस्वाभिप्रायलेखायै प्रियवरमनसे श्रीयुतरमायै दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः स्वाशिषो भूयासुस्तमाम्। शिवमत्रास्ति तत्रभवदीयं च नित्यमाशासे। यद्भवत्याः प्रेमास्पदानन्दप्रदं पत्रमागतं तत्समालोक्यातीव संतुष्टिं प्राप्तोऽहं पुनरपि श्रीमत्यै यत्किञ्चित्कष्टं दातुं प्रवर्त्ते तत्क्षन्तुमर्हति। महदाश्चर्य्यमेतद्यदानंदवर्द्धनाय भवतीं प्रति पत्रं प्रेषितं तत्प्रत्युत्तरितमागतं सद्धर्षशोककरं कुतो जातमिति प्रतिभाति नः कस्य श्रीमत्या आर्जवलेखं दृष्ट्वा सुखं सनाभ्यस्य मरणं श्रुत्वा दुःखं च न जायेत। परन्त्वेवं जाते सत्यपीदानीमशक्ये सांसर्गिकसंयोगवियोगात्मकजन्ममरणस्वरूपे लोकव्यवहारे भवती शोचितुं नार्हति। श्रीमत्याः कुत्रत्यं जन्म कियदायुः किं किमधीतं श्रुतं च? किं संस्कृतादार्य्यावर्त्तीयभाषाभ्यो भिन्ना काचिदन्यद्देशभाषाभ्यस्तास्ति न वा? कास्ति निजं गृहमभिजनश्च मातापितरौ विद्यमानौ नो वा? मृतादूबन्धोरन्ये ज्येष्ठाः कनिष्ठा वा भ्रातरो भगिन्यश्च संति न वा? यो मृतः स स्वतो ज्येष्ठः कनिष्ठो वा? अधुनाऽनघायाः संनिधौ स्वजातीयः पुरुषः स्त्री वा काचिद्वर्त्ततेऽथवैकाकिनी च? अहो कुतोऽस्मदीयं पत्रं काकतालीयन्यायवत्सुखदुःखसंयोगसूचकं जातमिति विस्मयामहे। परन्तु विद्वद्वर्य्यायां भवत्यां शोकस्य लेशोपि स्थातुमनर्हं इति निश्चित्य मृडयामः। यदि मार्गव्ययार्था धनापेक्षास्ति तर्हि सद्यो विज्ञाप्यतामियद्धनमत्र प्रेषणीयमिति नात्र शङ्कितुं लज्जितुं योग्या वर्त्ततेऽपूर्वपरिचये कथं धनार्थं लिखेयमिति। यदि स्वसमीपे वर्त्तते तर्हि लेखितुं न योग्यम्। यथा मया पूर्वपत्रे लिखितं तथैवात्र प्राप्तायां श्रीमत्यां लब्धव्यमित्येवानवद्ये कार्य्यमस्तु। यथा भवत्यात्र स्वशुभागमनसूचना द्विविधा कृता तत्राद्यायां प्रतिज्ञायां मासात्पर इति वचसि यदि शक्यमत्रागन्तुं तर्ह्यत्यन्तं वरमिति नियोजनम्। अहमप्यत्रपञ्चविंशतिर्दिनानि स्थातुमिच्छाम्येतदन्तराले समयेऽत्रागमिष्यति चेत्तर्हि मत्समागमो भविष्यति। पुनरितो यत्रगमिष्यामि। तस्यापि सूचनां श्रीमतीं प्रति विज्ञापयिष्यामीत्यलमधिकलेखेन विपश्चिद्विचक्षणायाम्।

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासे सिते दले।
पौर्णमास्यां बुधे वारे लिखित्वेदं ह्यलङ्कृतम्॥

(१) (६१)

स्वस्तिश्रीयुतानवद्यगुणालङ्कृतेभ्यः सनातनसत्यधर्मप्रियेभ्यः पाखण्डमतनिवृत्तचित्तेभ्योऽद्वैतेश्वरोपासनमिच्छुभ्यो बन्धुवर्गेभ्यो महाशयेभ्यः श्रीयुतहेनरीएस्‌ओलकाटाख्यप्रधानादिभ्यः श्रीमन्मेडमएच्‌पीबिलावस्टक्याख्यमन्त्रिसहितेभ्यः थीयोसोफीकेलसोसाईट्याख्यसभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतिस्वामिन आशिषो भवन्तुतमाम्॥

शमत्रास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे॥

यच्छ्रीमद्भिः श्रीमन्महाशयमूलजीठाकरशीहरिश्चन्द्रचिन्तामणितुलसीरामयादवज्याभिधानानां द्वारा पत्रं मन्निकटे संप्रेषितं तद्दृष्ट्वाऽत्यन्त आनन्दो जातः॥

अहो अनन्तधन्यवादार्हकस्य सर्वशक्तिमतः सर्वत्रैकरसव्यापकस्य सच्चिदानन्दानन्ताखण्डाजनिर्विकाराविनाशन्यायदयाविज्ञानादिगुणाकरस्य सृष्टिस्थितिप्रलयमुख्यनिमित्तस्य सत्यगुणकर्मस्वभावस्य निर्भ्रमाखिलविद्यस्य जगदीश्वरस्य कृपया पञ्चसहस्रावधिसंवत्सरप्रमितव्यतीतात् कालान्महाभाग्योदयेनास्मदक्षव्यवहाराणामस्मत्प्रियाणां पातालदेशे निवसतां युष्माकमार्यावर्त्तनिवासिनामस्माकं च पुनः परस्परं श्रीयुक्तयोपकारपत्रव्यवहारप्रश्नोत्तरकरण समय आगतः। मया श्रीमद्भिः सहातिप्रेम्णा पत्रव्यवहारः कर्तुं स्वीक्रियते। अतः परं भवद्भिर्यथेष्टं पत्रप्रेषणं श्रीयुतमूलजी ठाकरश्याख्यहरिश्चन्द्रचिन्तामण्यादिद्वारा मन्निकटे कार्यम्। अहमपि तद्‌द्वारा श्रीमतां समीपे प्रत्युत्तरपत्रं प्रेषयिष्यामि। यावन्ममसामर्थ्यमस्ति तावदहं साहाय्यमपि दास्यामि। भवतां यादृशं कृश्चीनाख्यादिसंप्रदायेषु मतं वर्त्तते तत्र ममापि तादृशमेवास्ति। यथेश्वर एकोऽस्ति तथा सर्वैर्मनुष्यैरेकेनैव मतेन भवितव्यम्। तच्चैकेश्वरोपासनाकरणाज्ञापालनसर्वोपकारं सनातनवेदविद्याप्रतिपादितमाप्तविद्वत्सेवितं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं सृष्टिक्रमाविरुद्धं न्यायपक्षपातरहितधर्मयुक्तमात्मप्रीतिकरं सर्वमताविरुद्धं सत्यभाषणादिलक्षणोज्ज्वलं सर्वेषां सुखदं सर्वमनुष्यैः सेवनीयं विज्ञेयम्॥ अतोभिन्नानि यानि क्षुद्राशयछलाविद्यास्वार्थसाधनाधर्मयुक्तैर्मनुष्यैरीश्वरजन्ममृतकजीवनकुष्टादिरोग निवारणपर्वतोत्थापनचंद्रखण्डकरणादि चरित्रसहितानि प्रचारितानि सन्ति तानि सर्वाण्यधर्ममयानि परस्परं विरोधोपयोगेन सर्वसुखनाशकत्वात् सकलदुःखोत्पादकानि सन्तीति निश्चयो मे। कदैवं परमेश्वरस्य कृपया मनुष्याणां प्रयत्नेनैतेषां नाशो भूत्वाऽऽर्यैः परम्परया सेवितमेकं सत्यधर्ममतं सर्वेषां मनुष्याणां मध्ये निश्चितं भविष्य-

तीति परमात्मानं प्रार्थयामि। यदा श्रीमतां पत्रमागतं तदाहं पञ्चालदेशमध्यवर्त्ति-लवपुरेऽन्यत्रासम्॥ अत्रत्या आर्य्यसमाजस्था बहवो विद्वांसः श्रीमतां पत्रमवलोक्यातीवाऽऽनन्दिता जाताः। नाहं सततमेकस्मिन् स्थाने निवसामि तस्मात् पूर्वोक्तद्वारैव पत्रप्रेषणेन भद्रं भविष्यति॥ यद्यपि बहुकार्य्यवशान्ममावकाशो न विद्यते तथापि भवादृशानां सत्यधर्म्मवर्धने प्रवर्त्तितशरीरात्ममनसां सर्वप्रियकरणे कृतैकनिष्ठानां सत्यधर्म्मोन्नत्या सर्वमनुष्यप्रियस्य कर्तॄणां दृढोत्साहयुक्तानां श्रीमतामभीष्टकरणाय मयावश्यं समयो रक्षणीय इति निश्चित्य परोपकाराय भवन्तो मया सहाहं च श्रीमद्भिः सह सुखेन पत्रव्यवहारं कुर्य्यामित्यलमतिविस्तरलेखेन बुद्धिमद्वरेषु॥

श्रीमन्महाराजविक्रमस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरे एकोनविंशतितमे (१९३५) संवत्सरे वैशाखकृष्णपक्ष-पञ्चम्यामादित्यवासरे पत्रमिदं लिखितमिति वेदितव्यम्॥

(दयानन्द सरस्वती)

(२) —————— (६२)

स्वस्तिश्रीमच्छ्रेष्ठ्य गुणाढ्येभ्यः सर्वहितं चिकीर्षुभ्यो विद्वदाचारसहितेभ्य एकेश्वरोपासनातत्परेभ्यस्तेनोक्तवेदविद्याप्रीत्युत्पन्नेभ्यः प्रियवरेभ्यः पातालदेशनिवासिभ्योऽस्मद्बन्धुवर्गेभ्य आर्य्यसमाजैकसिद्धांतप्रकाशथियोसोफीकलाख्यसभापतिभ्यः श्रीयुतहेनरीएसऔलकौटसंज्ञकप्रधानादिभ्यस्तत्रत्यसर्वसभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भवन्तुतमाम्। अत्रत्यं शमीश्वरानुग्रहतो वर्त्तते तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे॥ मया श्रीमत्प्रेषितानि पत्राणि सर्वाण्यार्य्यसमाजप्रधानश्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणिद्वारा प्राप्तानि तत्रत्यं वृत्तान्तं विदित्वा ममात्रत्यानामार्य्यसमाजप्रधानमन्त्रीसभासदां चात्यन्त आह्लादो जात इति। एतदुत्तमकार्य्यप्रवृत्तावीश्वराय सहस्रशो धन्यवादा देयाः। येनाद्वितीयेन सर्वशक्तिमताऽखिलजगत्स्वामिना सर्वजगज्जनकधारकेन परमात्मना बहुकालात्पाखण्डमतदुष्टोपदेशभावितपरस्परावरोधान्धकारसहितमनसां भवदादीनामस्मदादीनां च भूगोलस्थानां सर्वेषां मनुष्याणामुपरि पूर्णकृपान्यायौ विधाय पुनस्तद्दुःखनिमित्तकपटारूढमतविच्छेदनाय स्वोक्तेषु सर्वसत्यविद्याकोशेषु वेदेषु प्रीतिरुत्पादिताऽतो वयं सर्वे भाग्यशालिनः स्म इति निश्चितं विज्ञाय सकृपाकटाक्षेणास्माकमिदं सर्वहितसम्पादिकृत्यं प्रतिक्षणमुन्नतं करिष्यतीति प्रार्थयामहे॥

१—यच्छ्रीमत्प्रेषितसभाप्रतिष्ठापत्रस्योपरि मया स्वहस्ताक्षराणि मुद्रितं च कृत्वा श्रीमतः प्रति पुनः प्रेषितं तद्भवन्तः सद्यः प्राप्स्यन्ति। यच्च श्रीमद्भिर्लिखितमार्य्यावर्त्तीयार्य्यसमाजशाखाथियोसोफीकलसुसायटीति नाम रक्षितं तदस्माभिरपि स्वीकृतमिति विजानीत॥

२—सर्वैर्मनुष्यैर्यथेश्वरोपासना चतुर्वेदभूमिकायां प्रतिपादिता तथैवानुष्ठेयेति। तत्रोक्तस्यायं संक्षेपः। सर्वमनुष्यैः शुद्धदेशस्थितिं कृत्वात्ममनः प्राणेन्द्रियाणि समाधाय सगुणनिर्गुणविधानाभ्यामीश्वर उपासनीयः। एतस्या उपासनायास्त्रयोऽवयवाः। स्तुतिः प्रार्थनोपासनाचेति। एतेषामेकैकस्य द्वौ द्वौ भेदौ स्तः। तत्र यया तदीयगुणकीर्त्तनेन सहेश्वरः स्तूयते सा सगुणा स्तुतिः॥ तद्यथा।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथाथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ य० अ० ४० मं० ८॥

(स पर्य्यगात्) यः परितः सर्वतोऽगाद्व्याप्तवानस्ति (शुक्रम्) सद्यः सर्वजगत्कर्त्ताऽनन्तवीर्य्यवान् (शुद्धम्) न्यायसकलविद्यादिसत्यगुणसहित त्वात् पवित्रः (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) सर्वात्मनां साक्षी (परिभूः) सर्वतः सामर्थ्ययोगेन सर्वोपरि विराजमानः (स्वयम्भूः) सदा स्वसामर्थ्ययोगैकरसत्वाभ्यां वर्त्तमानः (शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः) सर्वदैकरसवर्त्तमानाभ्यो जीवरूपाभ्यः प्रजाभ्यः (याथातथ्यतो ऽर्थान् व्यदधात्) वेदोपदेशेन यथावदर्थानुपदिष्टवानस्ति। एवमादिना स सगुणरीत्या सर्वैः स्तोतव्यः। यत्र यत्र क्रियया सह सामानाधिकरण्येनेश्वरगुणाः स्तूयन्ते सा सा सगुणा स्तुतिरिति मन्तव्यम्। अथ निर्गुणा। (अकायम) अर्थाद्यो न कदाचिज्जन्मशरीरधारणेन साऽवयवो भवति (अव्रणम) नाऽस्य कर्हिचिच्छेदो भवति (अपापविद्धम्) यो न कदाचित्पापकारित्वेनान्यायकारी भवति॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते॥ १॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥ २॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥ ३॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥ ४॥ अथर्व० कां० १३। अनु० ४। मं० १६। १७। १८। २०॥

अत्र नवभिर्नकारैर्द्वितीयत्वसंख्यावाच्यमारभ्य नवत्वसंख्यावाच्यपर्य्यन्तस्य भिन्नस्येश्वरस्य निषेधं कृत्वैकमेवेश्वरं वेदोऽवधारयति यथा। सर्वे पदार्थाः स्वगुणैः सगुणाः स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणाः सन्ति तथेश्वरोऽपि स्वगुणैः सगुणाः स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणश्चेति। एवमादिना यया नेति निषेधसामानाधिकरण्येन सहेश्वरः स्तूयते सा निर्गुणा स्तुतिर्विज्ञेया॥

अथ प्रार्थना॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ यजु० अ० ३२। मं० १४॥

हे अग्ने सर्वप्रकाशकेश्वर कृपया त्वं यां मेधां देवगणा विद्वत्समूहाः पितरो विज्ञानिनश्चोपासते स्वीकुर्वन्ति तया मेधया स्वाहया सत्यविद्यान्वितया भाषया चान्वितं मामद्य कुरु संपादय । येन मनुष्येण विद्याबुद्धिर्याचिता तेन सर्वशुभगुणसमूहो याचित इत्येवमादिसगुणरीत्या परं ब्रह्म प्रार्थनीयम् । अथ निर्गुणा ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः । आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्राभेत्सहजानुषाणि ॥१॥ ऋ० १ । १०४ । ८ । मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्ररीरिषः ॥२॥ मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्रभामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ३ ॥ ऋ० १ । ११४ । ७ । ८ ॥

हे रुद्र दुष्टरोगदोषपापिजननिवारकेश्वर स्वकरुणया त्वं नोऽस्मान् मा-वधीः । स्वस्वरूपानन्दविज्ञानप्रेमाज्ञापालनशुद्धस्वभावात्कदाचिद्दूरे मा प्रक्षिप त्वं च मा परादा दूरे मा तिष्ठ नोऽस्माकं प्रियाणि भोजनान्यभीष्टान् भोगान् मा प्रमोषीः पृथङ् मा कुरु । हे शक्र सर्वशक्तिमँस्त्वं नोऽस्माकमाण्डा गर्भान् मा निर्भेद्भयुक्तान् मा कुरु । हे भगवन् नोऽस्माकं सहजानुषाणि सहजेनानुषङ्गीणि पात्राणि सुखसाधनानि मानिर्भेन्माविदीर्णानि कुरु ॥ १ ॥ हे रुद्र सर्व-दुष्टकर्मशीलानां जीवानां तत्तत्फलदानेन रोदयितरीश्वर त्वं नोऽस्माकं महान्तं विद्यावयोवृद्धं जनं मा वधीर्मा हिंसय । उतापि नोस्माकमर्भकं क्षुद्रं जनं मा वधीर्मा वियोजय । हे भगवन् नोऽस्माकमुक्षन्तं विद्यावीर्य्यसेचनसमर्थं मा वधीः । उतापि नोऽस्माकमुक्षितं विद्यावीर्य्यसिक्तं जनं सद्गुणसम्पन्नं वस्त्वन्तरं वा मा वधीः । नोऽस्माकं पितरं पालयितारं जनकमध्यापकं वोत मातरं मान्यकर्त्रीं जनयित्रीं विद्यां वा मा रीरिषो मा विनाशय । नोऽस्माकं प्रियास्तन्वः सुखरूपलावण्यगुणसहितानि शरीराणि मा रीरिषो मा हिंसय ॥ २ ॥ हे रुद्र सर्वरोगविदारकेश्वर त्वं कृपया नोऽस्माकं स्तोके ह्रस्वे तनये मा रीरिषः । नोऽस्माकमायौ मा रीरिषः । नोऽस्माकं गोषु पशुष्विन्द्रियेषु मा रीरिषः । नोऽस्माकमश्वेष्वग्न्यादिवेगवत्पदार्थेषु मा रीरिषः । त्वं भामितः पापानुष्ठानेनाऽस्माभिः क्रोधितो नोऽस्माकं वीरान् मा वधीः । हे रुद्र हविष्मन्तो वयं सदं ज्ञानस्वरूपं त्वामिदेव हवामहे गृह्णीम इत्येवमादिना निर्गुणरीत्या प्रार्थनीय इति ॥

अथ सगुणोपासना ॥

न्यायकृपाज्ञानसर्वप्रकाशकत्वादिगुणैः सह वर्त्तमानं सर्वत्र व्याप्तमन्तर्यामिणं यथास्तुतं यथाप्रार्थितं परमेश्वरं निश्चित्य तत्रात्ममनइन्द्रियाणि स्थिरीकृत्य दृढा स्थितिस्तदाज्ञायां च सदावर्त्तमानमिति सगुणोपासनम् ॥

अथ निर्गुणोपासना॥

सर्वक्लेशदोषनाशनिरोधजन्ममरणशीतोष्णक्षुत्तृट्शोकमोहमदमात्सर्यरूप-रसगन्धस्पर्शादिरहितं परमेश्वरं ज्ञात्वा स सर्वज्ञतयाऽस्माकं सर्वाणि कर्माणि पश्यतीति भीत्वा सर्वथा पापानुष्ठानमित्येवमादिना निर्गुणोपासना कार्या। एवं स्तुतिप्रार्थनोपासना भेदैस्त्रिधारूपां सगुणनिर्गुणलक्षणान्वितां मानसीं क्रियां कृत्वेश्वरोपासनं कार्य्यमिति॥

अथार्य्य शब्दार्थः—यो विद्याशिक्षासर्वोपकारधर्माचरणसमन्वितत्वा-ज्जनैर्ज्ञातुं संगन्तुं प्राप्तुमर्हः स आर्य्यः। आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः॥अ० ६।२।५८॥ वेदेश्वरयोर्वेदितृत्वेन तदाज्ञानुष्ठातृत्वं ब्राह्मणत्वम्। अष्टमं वर्षमारभ्याष्टचत्वारिं-शद्वर्षपर्य्यन्ते समये सुनियमजितेन्द्रियत्वविद्वत्संगसुविचारैर्वेदार्थश्रवणमनन-निदिध्यासनपुरःसरं सकलविद्याग्रहणायब्रह्मचर्य सेवनं पश्चादृतुकाले स्वस्त्र्य-भिगमनं परस्त्रीत्यागश्च कुमारत्वमेतदर्थयाचिनोः परस्थितयोरेतयोः समाना-नाधिकरण्येन पूर्वस्थितस्यार्य्यशब्दस्य प्रकृतिस्वरत्वशासनादेतस्यैतदर्थयाचित्वं सिद्धमिति विज्ञेयम्।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्॥
ऋ० १।५१।८॥

वेदविद्भिर्वेदेष्वार्य्यशब्दार्थे दृष्ट्वोत्तमपुरुषाणामार्येति संज्ञा रक्षिता। यदा सृष्टिवेदौ प्रादुर्भूतौ तदा नाम रक्षणचिकीर्षाभूत्। पुनर्ऋषिभिः श्रेष्ठदुष्टयो-र्द्वयोर्मनुष्यविभागयोर्वेदोक्तानुसारेण द्वे नाम्नी रक्षिते श्रेष्ठानामार्येति दुष्टानां दस्य्विति। अस्मिन् मन्त्रे मनुष्यायेश्वरेणाज्ञा दत्ता हे मनुष्य! त्वं बर्हिष्मत उत्तमगुणकर्मस्वभावविज्ञानप्राप्तये श्रेष्ठगुणस्वभावकर्माचरणपरोपकारयुक्तान् विदुष आर्यान् विजानीहि। ये च तद्विरुद्धा दस्यवः सन्ति तानपि दुष्टगुण-स्वभावकर्माचरणान् परहानिकरणतत्परान् दस्यूँश्च विजानीहि। एतान् सव्रतान्सत्याचरणादियुक्तानार्यान् रन्धय संसाधय विद्याशिक्षाभ्यां च शासत् शाधि। एवमव्रतान् सत्यानुष्ठानाद्विरुद्धाचरणान् रन्धय हिन्धि दण्डेन शासत् शाधि ताडय। अनेन स्पष्टं गम्यते आर्यस्वभावविरुद्धा दस्यवो दस्युस्वभाव विरुद्धा आर्या इति॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणाधमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥ २॥
ऋ० १।११७।२१॥

अश्विनावध्वर्यू दस्युं दुष्टं मनुष्यमभिधमन्तौ मनुषायार्यायोरु बहुविधं विद्याशिक्षासिद्धं ज्योतिश्चक्रथुः कुर्यातम्। अत्रापि मनुष्यनाम्नी आर्यदस्यू

इतिवेद्यम। एते नाम्नी प्राङ्मनुष्यसृष्टिसमये किञ्चित्कालानन्तरं वेदाज्ञानुसारेण विद्वद्भी रक्षिते। हिमालयप्रान्त आद्या सृष्टिरभूत्। यदा तत्र मनुष्याणां वृद्धया महान् समुदायो बभूव तदा श्रेष्ठमनुष्याणामेकः पक्षोऽश्रेष्ठानां च द्वितीयो जातः। तत्र स्वभावभेदादेतयोर्विरोधो बभूव पुनर्य आर्यास्त एतद्देशमाजग्मुः पुनस्तत्संगेनास्या भूमेरार्य्यावर्त्तेति संज्ञा जाता। आर्य्याणामावर्त्तः समन्ताद्वर्त्तनं यस्मिन् स आर्य्यावर्त्तोदेशः। तद्यथा—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्य्यावर्त्तं प्रचक्षते॥ १॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यवर्त्तं विदुर्बुधाः॥ २॥

मनु० अ० २। श्लो० १७। २२॥

देवनद्योर्देवानां विदुषां संगसहितयोः सरस्वतीदृषद्वत्योर्या पश्चिमप्रान्ते वर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थं सागरमभिगच्छन्ती सिन्धुनद्यस्ति तस्याः सरस्वतीति संज्ञा। या प्राक् प्रान्तवर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थितं समुद्रमभिगच्छन्ती ब्रह्मपुत्रनाम्ना प्रसिद्धा नद्यस्ति तस्या दृषद्वतीति संज्ञा एतयोर्मध्ये वर्त्तमानं देवैर्विद्वद्भिरार्य्यैर्मर्य्यादीकृतं देशमार्य्यावर्त्तं विजानीत॥ १॥ तथा च यः पूर्वसमुद्रं मर्य्यादीकृत्य पश्चिमसमुद्रपर्यन्ते विद्यमानो हिमालय विन्ध्याचलयोरुत्तरदक्षिणप्रान्तस्थितयोर्मध्ये देशोऽस्ति तमार्य्यावर्त्तं बुधा विदुः। आर्य्याणां समाजो या सभा स आर्य्यसमाजः। दस्युभावत्यागायार्य्यागुणग्रहणाय च या सभा साप्यार्य्यसमाजसंज्ञां लभते। अतः किमागतं सर्वासां शिष्टसभानामार्य्यसमाजनामरक्षणं परमं भूषणमस्ति। नात्र काचित् क्षतिरिति विजानीमः॥

॥ ४॥ स्वयं सत्यशिक्षाविद्यान्यायपुरुषार्थसौजन्यपरोपकाराद्याचरणे वर्त्तेत तत्रैव प्रयत्नतो बन्धुजनानपि वर्त्तयेत्। इति संक्षेपत उत्तरम्। एतस्य विस्तरविज्ञानन्तु खलु वेदादिशास्त्राध्ययनश्रवणाभ्यामेव वेदितुं योग्यमस्ति। ये च मया वेदभाष्यसन्ध्योपासनार्य्याभिविनयवेदविरुद्धमतखण्डनवेदान्तिध्वान्तनिवारणसत्यार्थप्रकाशसंस्कारविध्यार्य्योद्देश्यरत्नमालाद्याख्या ग्रन्था निर्मितास्तद्दर्शनेनापि वेदोद्देश्यविज्ञानं भवितुमर्हतीति विजानीत॥

॥ ५॥ यच्चेतनवत्त्वं तज्जीवत्वम्। जीवस्तु खलु चेतनस्वभावः। अस्येच्छादयो धर्म्माः सतु निराकारोऽविनाश्यनादिश्च वर्त्तते। नायं कदाचिदुत्पन्नो न विनश्यति। एतस्य विचारो वेदेष्वार्य्यकृतग्रन्थेषु च बहुभिर्हेतुभिः कृतोऽस्ति। अत्र खलु विस्तरलेखावकाशाभावात् स्वल्पः प्रकाश्यते।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥ यजु० अ० ४० । मं० २ ।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणीति जीवस्य शतवर्षपर्य्यन्तं प्रयत्नकरणं धर्म्मः । जिजीविषेत् जीवितुमिच्छेदितीच्छाधर्म्मः ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

यजुः अ० ६ । २२ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति सुखेच्छाकरणात् सुखं धर्म्मः । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्त्विति दुःखत्यागेच्छाकरणाद् दुःखं धर्म्मः । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति द्वेषो धर्म्मः । वेदाहमेतं पुरुषम् । यजुः । अ० ३१ । मं० १८ । इति ज्ञानं धर्म्मः । जीवश्चेतनस्वरूपत्वाद्यद्यदनुकूलं तत्तत्सुखमिति विदित्वा सदेच्छति । यद्यत् प्रतिकूलं तत्तद् दुःखमिति ज्ञात्वा सदा द्वेष्टि सुखप्राप्तये दुःखहानये च सदा प्रयतते । एतदन्तर्गताः सूक्ष्मा बहवोऽन्येऽपि जीवस्य धर्म्माः सन्तीति वेद्यम् । इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति ॥ न्याय० । अ० १ । सू० १० । जीवस्यैतानि लिंगानि धर्म्मलक्षणानि सन्तीति ज्ञातव्यम् । प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि ॥ वैशेषिक० अ० ३ आ० २ सू० ४ । कोष्ठ्यस्य वायोर्निस्सारणं प्राणः । बाह्यस्य वायोराचमनमपानः । नेत्रस्यावरणं निमेषः । तदुद्घाटनमुन्मेषः । जीवनं प्राणधारणम् । मनो ज्ञानम् । गतिरुत्क्षेपणाद्यानुष्ठानम् । इन्द्रियान्तरविकाराः ॥ इन्द्रियसंयोजनं कस्माच्चिद्विषयान्निवर्त्तनम् । अन्तर्हृदये व्यापारकरणम् । विकाराः । क्षुत्तृड्ज्वरादिरोगादयः । धर्म्मानुष्ठानमधर्म्मानुष्ठानं च । संख्याजात्यभिप्रायेणैकत्वं व्यक्त्यभिप्रायेण बहुत्वम् । पूर्वानुभूतस्य ज्ञानमध्येऽङ्कनं संस्कारः । परिमाणं परमसूक्ष्मत्वम् । पृथक्त्वमस्यान्तोऽन्यं भेदः । संयोगो मेलनम् । वियोगः संयुज्य पृथग्भवनं वियोगत्वमिति च । जीवधर्म्माः । मानसोऽग्निर्जीव इति महाभारतस्य मोक्षधर्म्मान्तर्गते भरद्वाजोक्तौवर्त्तते । अस्यायमर्थः । यो मनस्यन्तःकरणे भव इच्छादिज्ञानान्तसमूहप्रकाशसमवेतः पदार्थोऽस्ति तस्यजीवसंज्ञेति बोध्यम् । अयं खलुदेहेन्द्रियप्राणान्तःकरणाद्भिन्नश्चेतनोऽस्ति । कुतः । अनेकार्थानां युगपत् संधातृत्वात् । तद्यथा । अहंयच्छ्रोत्रेणाश्रौषं तच्चक्षुषा पश्यामि । यच्चक्षुषाऽद्राक्षं तद्धस्तेन स्पृशामि । यद्धस्तेनास्पार्क्षं तद्रसनया स्वदे । यद्रसनयाऽस्वदिषि तद्घ्राणेन जिघ्रामि । यद्घ्राणेनाघ्रासिषं तन्मनसा विजानामि । यन्मनसाऽज्ञासिषं तच्चित्तेन स्मरामि । यच्चित्तेनास्मार्षं तद्बुध्या निश्चिनोमि । यद्बुद्ध्या निरचैषं तदहङ्कारेणाभिमन्य इत्यादिप्रत्यभिज्ञया सहवर्त्तमानं यदस्ति तदात्मस्वरूप सर्वेभ्यः पृथगस्तीति वेदितव्यम् ।

कुतः। यः स्वस्वविषये वर्त्तमानैरन्यविषयाद्भिन्नवर्त्मभिः श्रोत्रादिभिः पृथक पृथग्गृहीतानां शब्दार्थानां वर्त्तमानसमये सन्धातास्ति स एव जीवोस्त्यतः। नह्यन्यदृष्टस्यान्यः स्मरति नहि श्रोत्रस्य स्पर्शग्रहणे साधकत्वमस्ति न च त्वचः शब्दग्रहणे परन्तु श्रोत्रेण श्रुतो घटस्तमेवाहं हस्तेन स्पृशामीति यस्य पूर्वकालदृष्टस्यानुसंधानेन पुनस्तस्यैवार्थस्य प्रत्यभिज्ञया वर्त्तमाने दर्शनमस्ति स उभयदर्शिनः सर्वसाधनाभिव्यापकस्य सर्वाधिष्ठातुर्ज्ञानस्वरूपस्य जीवस्यैव धर्म्म उपपद्यत इति मन्तव्यम्। एवमादिप्रकारेण बहूनामार्य्याणां वेदशास्त्रबोधसमाधियोगविचाराभ्यां जीवस्वरूपज्ञानं बभूव भवति भविष्यति वेति। यदायं शरीरं त्यजति तदा मरणं जातमित्याचक्षते नहि खलु तस्य देहाभिमानिनो जीवस्य वियोगाद्विना मरणं सम्भवति। शरीरं त्यक्त्वायं खल्वाकाशस्थः सन्नीश्वरव्यवस्थया स्वकृतपापपुण्यानुसारेण शरीरान्तरं प्राप्नोति। यावत्पूर्वं शरीरन्त्यक्त्वाऽऽकाशे गर्भवासे बालाद्यवस्थायां वा तिष्ठति न तावदस्य किञ्चिद्विशेषविज्ञानमुपपद्यते। किन्तु यथा निद्रामूर्च्छाङ्गतो जीवो वर्त्तते तथा तत्रास्य गतिरिति। यद्येतस्य वार्त्ताकरणे कशादताडने परशरीरावेशे सामर्थ्यं वर्त्तते तर्हि-स कथं न पुनः प्रियं स्थानं धनं शरीरं वस्त्रभोजनादिकं प्रियान् स्त्रीपुत्रपितृबन्धुमित्रभृत्यपशुयानादीन् प्राप्नोति। यद्यत्र कश्चिद्ब्रूयाद्यदा सम्यग्ध्यानं कृत्वा तमाह्वयेत्। तर्हि तत्समीपमागच्छेत्। अत्र ब्रूमः। यदा कस्यचित्कश्चित्प्रियो म्रियते तदा स तस्य प्राप्त्यर्थमहर्निशं सम्यग्ध्यानं करोति पुनः स कथं नागच्छति। यदि कश्चिद्ब्रूयात्पूर्वसम्बन्धिनः प्रति नागच्छत्यन्यान् प्रत्यभ्यागच्छतीति। नैतदुपपद्यते। कुतः। पूर्वसम्बन्धिनः प्रति प्रीतेर्विद्यमानत्वेनासम्बन्धिषु प्रीतेरदर्शनात्। नेदमनधिष्ठातृकं स्वतन्त्रं जगत्सम्भवति। सर्वस्यास्याधीशस्य न्यायकारिणः सर्वज्ञस्य सर्वेभ्यो जीवेभ्यो पापपुण्यानां फलप्रदातुरीश्वरस्य जागरूकत्वात्। अतः श्रीमद्भिर्योस्मृतकस्य प्रतिबिम्बो मत्समीपे प्रेषितः। तत्र कापट्यधूर्त्तत्वव्यवहारो निश्चीयत इति। यथेन्द्रजालीचातुर्य्येणाश्चर्य्यान् विपरीतान् व्यवहारान् सत्यानिव दर्शयति तथाऽयमस्तीति प्रतीयते। यथा कश्चित्सूर्य्यचन्द्रप्रकाशे स्वच्छायायां कण्ठशिरसउपरिनिमेषोन्मेषवर्जितां स्थिरां दृष्टिं कृत्वा किञ्चित्कालानन्तरं शुद्धमाकाशं प्रत्यूर्ध्वं पुनरेवमेवनिमेषोन्मेषवर्जितां दृष्टिं कुर्य्यात्स स्वस्माद्भिन्नां स्वच्छायाप्रतिबिम्बरूपां महतीं मूर्त्तिं पश्यति तथैवाऽयं व्यवहारो भवितुमर्हति। संस्कृतविद्यायां भूतशब्देन यः कश्चित्सशरीरः प्राणी वर्त्तित्वा न भवेत्तस्य ग्रहणमस्ति। यस्तु खलु निर्जीवो देहः समक्षे वर्त्तते यावद्यस्य दाहादिकं न क्रियते तावत्तस्य प्रेत इति संज्ञा। ईश्वरेण समः कश्चिन्न भूतो न भविष्यतीत्याप्तवाक्यम्॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥ म० अ० ५ श्लो० ६५॥

अत्र भूतशब्देन भूतस्थस्य ग्रहणम्। "प्रेतस्य" "प्रेतहारैः" रेताभ्यां पदाभ्यां मृतकशरीरस्य प्रेतइति नाम। यथा पितृमेधं समाचरन्निति पदेन मृतकस्य पितृशरीरस्य दाहवद्गुरोर्मृतकशरीरस्य दाहकरणं पितृमेधसंज्ञां लभते तथा मृतकानां शरीराणां विधिवद्दाहकरणं नृमेधइति विज्ञेयम्। इदं प्रसंगादुक्तम्। यथा भूतप्रेतेष्विदानींतनानामभिप्रायोस्ति तथेदं नैव सम्भवति। कुतः। समूलतोऽस्य मिथ्यात्वेन भ्रान्तिरूपत्वात्। नात्र कश्चित्संदेह इदमस्ति नास्तिवेति किंतु सर्वमिदं कपटजालमिति विजानीमः। अत्रालमतिविस्तरेणैतावतैवाधिकं भवद्भिर्विज्ञेयमिति॥

॥ ७ ॥ भवन्तो यां शिक्षां मत्तो ग्रहीतुमिच्छन्ति सा परमार्थव्यवहार-विषयभेदेनातिविस्तीर्णास्ति। पत्रद्वारालिखितुमशक्या। सा संक्षेपतोमद्रचितेषु लिखितास्ति। विस्तरशस्तुवेदादिशास्त्रेषु। परन्त्वेतदुत्तरदानाय मया श्रीयुत-हरिश्चन्द्रचिन्तामणीन् प्रति लिखितं मद्रचितस्य स्वल्पस्यार्य्योद्देश्यरत्नमाला-ग्रन्थस्यैंगलण्डभाषया विवर्णं कृत्वा भवतां समीपे सद्यः प्रेषयन्त्विति ते तत्र शीघ्रं प्रेषयिष्यन्तीति बुध्यध्वम्। तद्दर्शनेन श्रीमतामुद्देशतो मदुपदेशशिक्षा भविष्यति॥

॥ ८ ॥ वेदोक्तानुसारेण वक्ष्यमाणरीत्या मृतकक्रिया कर्त्तव्या। तद्यथा। सेयं संस्कारविधिग्रन्थे विस्तरशः प्रतिपादिता तथाप्यत्र संक्षेपतो लिख्यते। यदा कश्चिन्मनुष्यो म्रियेत तदा मृतकं शरीरं सम्यक् स्नपयित्वोत्तमसुरभिणाऽनुलेप्य सुगन्धियुक्तैर्नवीनैः शुद्धैर्वस्त्रैराच्छाद्य मलीनानि वस्त्राणि पृथक् कृत्वा श्मशानभूमिं नीत्वा तत्र यावानूर्ध्ववाहुकः पुरुषस्तावद्दीर्घां पार्श्वतो व्यायाम-मात्र विस्तीर्णामूरुदघ्नीं गम्भीरां वितस्तिमात्रीमधस्तादेतत्परिमाणां वेदिं रचयित्वा जलेनाभ्युक्ष्य शरीरभारसमं घृतं वस्त्रपूतं कृत्वा तत्र प्रतिप्रस्थमेकैकरत्तिकापरि-माणां कस्तूरीमेकमाषपरिमाणं केशरं च संपेष्य यथावन्मेलयेत्। चन्दनपलाशा-म्रादिकाष्ठानि गृहीत्वा वेदिगर्त्तपरिमाणैनैतेषां खण्डान् कृत्वाऽधस्तादर्धवेदिं पूरयित्वा तदुपरि मध्यतो मृतकं देहं संस्थाप्य कर्पूरगुग्गुलचन्दनादि चूर्णान् मृतकदेहाभितो विकीर्य्य पुनस्तैरेव काष्ठैस्ततत ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रीं वेदिं संचित्य तन्मध्येऽग्निस्थापनं कुर्य्यात्। तद्घृतं स्वल्पं स्वल्पं गृहीत्वा यजुर्वेदस्यैकोनचत्वा-रिंशाध्यायस्थं प्रतिमन्त्रमुच्चार्य्याभितो दाहयेत्। पुनर्य्यदा भस्मीभूतं शरीरं भवेत्तदा ततो निवर्त्य जलाशयं स्वं स्वं गृहं वा प्राप्य स्नानादिकं कृत्वा निःशोकाः संतो यथायोग्यं स्वानि स्वानि कार्य्याणि कुर्य्युः। पुनर्य्यदा दाहदिवसात्तृतीये दिवसे सर्वं शीतलं भवेत् तदा तत्र गत्वा सास्थि सर्वं भस्म गृहीत्वा स्थानान्तरे शुद्धदेशे गर्त्तं खनित्वा तत्र तत्सर्वं संस्थाप्य खनितगर्त्तमृदाऽऽच्छादयेत्। एतावानेव वेदोक्तसनातनोत्तमतमो मृतकसंस्कारोऽस्ति नातोऽधिकोन्यूनश्चेति। एवमेव यानि स्वमित्रशरीरास्थीनि भवतः समीपे स्थितानि संति तान्यपि क्वचि-च्छुद्धभूमौ गर्त्तं खनित्वा तत्र स्थापयित्वा मृदाच्छादनीयानीति॥

॥ ९ ॥ पत्रमिङ्गलण्डाख्यदेशे यथालिखितस्थाने प्रेषितम् ॥

॥ १० ॥ यदा युष्माकं निश्चयः स्यात्तदा सभानामविपर्य्यासः कार्य्यः। विदुषां सभाया अयं नियमोस्ति यत् किञ्चिन्नूतनं कार्य्यं कर्त्तव्यं तत्सर्वमुत्तमान् विदुषः सभासदः प्रति निवेद्य तदनुमत्या कार्य्यमिति यद्यत्सर्वोपकारविरुद्धं सभाकृत्यं तत्तन्नैव कदाचिदाचरणीयम्। यद्यत्तु खलु परिणामानन्दफलं तत्तद्-चिरादेव पुरुषार्थेन समयं प्राप्य कर्त्तव्यम्। तस्माद्यदावसर आगच्छेत्तदा तत्रत्यसभाया आर्य्यसमाजेति नामरक्षणे न काचित्क्षतिरस्तीति मतं मे ॥

॥ ११ ॥ अत ऊर्ध्वं श्रीमन्तो यद्यत्पत्रं मत्समीपे प्रेषयेयुस्तत्तन्मन्नामांकितं प्रेषणीयम्। परन्तु पूर्वलिखितेन श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामण्यादिद्वारैव प्रेषणीयम्। तत्रायं क्रमः। पत्रोपरिमन्नाम पत्रावरणपृष्ठोपरि श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणीनां नाम लिखित्वा प्रेषणीयम्। सच्चिदानन्दादिलक्षणाय सर्वशक्तिमते दयासागराय सर्वस्य न्यायाधीशाय परब्रह्मणेऽसङ्ख्याता धन्यवादा वाच्याः। यत्कृपया भवद्भिः सहाऽस्माकमस्माभिः सह भवतां च संप्रीत्युपकारसमयः प्राप्तः। एतममूल्यं समयं प्राप्य यूयं वयं चैवं प्रयतामहे यतो भूगोलमध्येमनुष्याणां पाषण्डमतपापाचरणाविद्यादुराग्रहादिदोषनिवारणेनैकंसनातनं वेदप्रमाणसृष्टि-क्रमानुकूलं सत्यं मतं प्रवर्त्तेतेति। पत्रद्वाराऽतीवस्वल्पं कार्य्यं सिध्यति। याव-त्समक्षे परस्परं वार्त्ता न भवन्ति न तावत्समस्तो लाभो जायते। परन्तु यस्ये-श्वरस्यानुग्रहेण पत्रद्वारा वार्त्ताः प्रवृत्ताः सन्ति तस्यैव कृपया भवतामस्माकं च कदाचित्समक्षेऽपि समागमो भविष्यतीत्याशासे किंबहुना लेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

भूतकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभोमासासितेदले।
शुक्रेरुद्रतिथौ सम्यक् पत्र पूर्तिः कृता मया ॥ १ ॥

संवत् १९३५ श्रावणवदी ११ शुक्रवासरे पत्रमिदमलङ्कृतमिति विज्ञेयम् ॥

(दयानन्दसरस्वती)

(३) ———— (६३)

ससे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख लेवे। इससे उत्तम बात दूसरी कोई भी नहीं। मैं बहुत प्रसन्नता से आप लोगों को लिखता हूं कि जो आपने ईसाई आदि आधुनिक मत छोड़, परम पवित्र सनातन ईश्वरोक्त वेदमत का स्वीकार कर, इसके प्रचार में तन मन और धन भी लगाते हो। और उस बात से अति प्रसन्नता मुझको हुई कि जो आपने यह लिखा कि कभी आप भी वेदों को छोड़ दें तो भी हम लोग उन को न छोड़ेंगे। क्या यह बात छोटी है? यह परमात्मा की परम कृपा का फल है कि जिसने हम और आप लोगों को अपने वेदोक्त मार्ग में निश्चय पूर्वक प्रवृत्त किए। उसको कोटी कोटी धन्यवाद देना भी थोड़े हैं। जैसी उसने हम और आप लोगों पर करुणा की है वैसी ही कृपा

सब पर शीघ्र करें कि जिससे सब लोग सत्य मत में चलें और झूठ मतों को छोड़ देवें। कि जैसा अपने आत्मा अत्यन्त आनन्दित हैं वैसे सब के आत्मा हों। और एक आनन्द की बात की सूचना करता हूं कि जिसको सुन आप लोग बहुत आनन्दित होंगे। सो यह है कि एक वसीयत नामा १८ अठारह पुरुष अर्थात् जिन में दो अर्थात् एक आप और दूसरी ब्लेवस्तिकी और शोलह पुरुष आर्य्यावर्त्तीय आर्य्यसमाज के प्रतिष्ठित पुरुष हैं। इन आप सब लोगों के नाम पर पत्र और नियम लिख रजष्टरी कराके आप और सब लोगों के पास शीघ्र पत्र भेजूंगा कि जिससे पश्चात् किसी प्रकार की गड़बड न होकर मेरे सर्वस्व पदार्थ परोपकार में आप लोग लगाया करें और मेरी प्रतिनिधि यह सभा समझी जावेगी।

इस लिए उस पत्र को आप लोग बहुत अच्छी प्रकार रखियेगा कि वह पत्र आगे बड़े २ कामों में आवेगा। किमधिलेखेन प्रियवर विद्वद्विचक्षणेषु। *
सं० १९३७ मि० श्रावण वदी ६ मंगलवार ता० १४ जुलाई सन् १८८०। †

(४) ——— (६४)

ता० १४ जुलाई सन् १८८०

श्रीयुत प्रियवर एच् एस् करनेल ओलकाट साहेब तथा एच् पी ब्लेवस्तिकी जी आनन्दित रहो। नमस्ते। अब मेरा शरीर नीरोग हो के स्वस्थानन्द में है। आशा है कि आप लोग भी आनन्द में होंगे। सुना था कि आप लोग लंका अर्थात् सिलौन की यात्रा के लिए गए थे। वहां क्या २ आनन्द की बातें हुई और कुशल क्षेम आए ही होंगे। मैं इस समय मेरठ में ठहरा हूं। एक मास भर रहूंगा। जैसा दृढ़ता से वेदों को परम पवित्र सनातन ईश्वरोक्त सबका हितकारी आपने अपने नागरी पत्र में लिख कर काशी को मेरे पास भेजा था उसको देख मैं और समस्त आर्य्य विद्वान् लोग बहुत प्रसन्न हुए। सत्य है कि (अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति) जो धर्मात्मा विद्वान् पुरुष हैं वे जिस धर्म की बात को ग्रहण करते हैं उसको कभी नहीं छोड़ते। अब मैं जो थियोसोफीकल सुसायटी में वैदिकी शाखा है वह आर्य्यसमाज और थियोसोफीकल

---

* यह पत्र पेंसिल से लिखा हुआ है और इस पर पृष्ठ संख्या ३ तीन है। जिस से विदित होता है कि इसके पूर्व दो पृष्ठ और लिखे गए थे, परन्तु उन दोनों पृष्ठों का पता नहीं है। यद्यपि पत्र के आदि, मध्य वा अन्त में कर्नल आलकट साहब का नाम लिखा हुआ नहीं है परन्तु सारे पत्र का आशय विचारने से यही बोध होता है कि यह पत्र श्री स्वामीजी महाराज की ओर से आलकट साहब को लिखा गया था।

† इस पंक्ति से बहुत नीचे बांई ओर "स्वामी जी" पेंसिल से लिखा हुआ है जो बतलाता है कि श्री स्वामी जी महाराज की ओर से जो पत्र कर्नल आलकट साहब को लिखा गया उस की यह कापी है। ये नोट "पत्र व्यवहार" में म० मुंशीराम जी के हैं।

सुसायटी की भी शाखा है। न आर्य्यसमाज थियोसोफीकल सुसायटी की शाखा और न थियोसोफीकल सुसायटी आर्य्यसमाज की शाखा है; किन्तु जो इन दो समाजों के धर्म के सम्बन्धार्थ प्रेम का निमित्त वैदिकी शाखा है, वही परस्पर सम्बन्ध का हेतु है। इत्यादि बातों की प्रसिद्धि जैसी आर्य्यसमाजों में मैं शीघ्र करूंगा वैसी प्रसिद्धि थियोसोफीकल सुसायटी में भी आप अवश्य करेंगे। इस बात का गुप्त रहना ठीक नहीं। क्योंकि आगे आर्यसमाज वैदिकी शाखा और थियोसोफीकल सुसायटी के सभासदों को, जैसा पूर्वोक्त सम्बन्ध है वैसा ही जानना, मानना, कहना और प्रसिद्धि करना सर्वदा उचित होगा, अन्यथा नहीं। ऐसी प्रसिद्धि हुए पर किसी को कुछ भ्रम न रहकर सुनिश्चय से सब को आनन्द होता जायगा। और जो मैंने सिनट साहेब से कहा था वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकि योग के किए कराये विना किसी को भी योग का महत्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं होसकता, वरन सन्देह और आश्चर्य्य में पड़ कर उसी तमाशे दिखलाने वाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं, और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनट साहेब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूं, चाहे वे राजी रहैं चाहे नाराज हों, क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित मुझ से यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया, ऐसी संसार की तमाशे की लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मेडम एच् पी ब्लेवस्तिकी के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या धर्मात्मता की बातें हैं कि जिनसे मनुष्यों के आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त होसकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मेडम साहेब आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं। किन्तु कोई चाहे तो उसको योग रीति सिखला सकता हूं कि जिसके अनुष्ठान करने से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो जाय।

(दयानन्द सरस्वती)

---

(२) * ओ३म * (६५)

एच् पी मेडम ब्लेवस्तकी जी आनन्दित रहो॥

आपकी चिट्ठी ता० ८ अक्टूबर सन् १८८० ई० की लिखी हुई बाबू छेदीलाल जी रईस मेरठ के द्वारा मेरे पास देहरादून में पहुंची। इसका क्रमानुसार उत्तर

सत्य निश्चय से देता हूं। आपने जो अमरीका से पत्र और उनके उत्तर में यहां से मैंने वहां पत्र भेजे थे पुनः आपका और मेरा समागम सहारनपुर, मेरठ, काशी और फिर मेरठ में हुआ था। उन सब के अनुसार अपने निश्चय के अनुकूल सब दिन मैं वर्त्तमान करता रहा हूं। परन्तु वैसा वर्त्तमान आपका ठीक २ नहीं देखता हूं क्योंकि प्रथम आप लोगों ने जैसा लिखा था, जैसा समागम में प्रथम विदित किया था, वैसा अब कहां है? आप अपने आत्मा से निश्चय कर लीजिये। प्रथम संस्कृत पढ़ने, शिक्षा लेने, सुसायटी को आर्य्यसमाज की शाखा करार देने आदि के लिए लिखा था, और वे चिट्ठियां छप के सर्वत्र प्रसिद्ध भी हैं, और जो मैंने पत्र वहां भेजे थे उनकी नकल भी मेरे पास उपस्थित हैं। देखिये कि जब अभी मेरठ में उस दिन रात को आर्यसमाज और सुसायटी के नियम विषयक बातें हुई थीं तब मैंने आप और अन्य सब के सामने क्या यह बात नहीं कही थी कि आर्यसमाज के नियमों से सुसायटी के नियमों में कुछ भी विशेष नहीं? यही बात मैंने बम्बई की चिट्ठी में भी आपके पास लिख भेजी थी। उन्हींके अनुसार मैं अब भी बराबर मानता और कहता हूं कि आर्यसमाजस्थों को सुसायटी में धर्मादि विषयों के लिए मिलना उचित नहीं। और यही बात आप वा एच् एस् करनेल ओलकाट साहिब ने अपने पुस्तक, उपदेश और संवाद में क्या नहीं लिखी और नहीं कही है कि जो सत्यधर्म सत्यविद्या और ठीक २ सुधार की और परम योग आदि की बातें सदा से जैसी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों और वेदादि शास्त्रों में थीं और हैं वैसी कहीं न थीं और न हैं। अब विचारिये कि थियोसोफिष्टों को एतद्देश वासी मत में मिलना चाहिए किंवा आर्य्यावर्त्तियों को थियोसोफीष्ट होना चाहिए। और देखिये कि आज तक मैंने वा किसी आर्यसमाजस्थ ने किसी थियोसोफीष्ट को आर्यसमाज में मिलने का उपदेश वा प्रयत्न कभी किया है? और आप अपनी बात को अपने आत्मा में विचार लीजिये कि आपने क्या करी और क्या करते जाते हैं। कितने ही आर्यसमाजस्थों को थियोसोफीष्ट होने के लिए कितना प्रयत्न और कितना उपदेश किया। और कइयों से १०)दस २रु०फीस सभासद होने के लिए लिए हैं। और मेरठ में बात होने के पश्चात् बाबू छेदीलाल जी से अम्बाले में थियोसोफीष्ट होने के लिये क्या न कहा था, और शिमले से चिट्ठी न भेजी थी? इसीलिए अवश्य मैंने मेरठ आर्यसमाज में सबके सामने पूर्वोक्त हेतुओं से यह कहा था कि जो कभी आप वा एच् एस् करनेल ओलकाट साहिब वा और कोई थियोसोफीष्ट अथवा अन्य कोई जन किसी सभा में सभासद होने के लिए कहे तब उसको यही उत्तर देना कि जो आर्यसमाज के नियमोंसे थियोसोफिकल सुसायटी आदि के नियम और उद्देश एकही हैं तो हम और वे भी सब एक हैं और जो विरुद्ध हैं तो हमको सुसायटी वा अन्य किसी सभा में मिलना कुछ आवश्यक नहीं। और तब तक आर्यसमाज के नियम अखण्डित हैं कि जब तक

उनमें कोई बात खण्डनीय विदित न हो। अब कहिए निर्भ्रान्त पोप रूम की बात मेरी हैं वा आपकी? और जो मैंने, अन्य देशियों के समाज में मित्रता और स्नेह वैसा कभी नहीं होसकता जैसाकि स्वदेशीयों के समाज में, यह बात इस प्रसङ्ग पर कही थी, कहता हूं और कहूंगा कि (असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे) अर्थात् जिनका एक देश, एक भाषा, एकत्र जन्म, सहवास और विवाहादि व्यवहार सम्बन्ध आपस में होते हैं उनसे उनको जितना लाभ और उनकी उनमें जितनी प्रीति होती है उतना अन्य देश वासियों से अन्य देश वासियों को लाभ और उन्नति नहीं हो सकती। देखिये भाषा ही के केवल भेद होने से मुझ को और योरपियन् को कितनी कठिनता परस्पर उपकार होने में होती है। और जिन के पूर्वोक्त सब भिन्न हैं उन में पूर्वोक्त बातें कम होती ही हैं। और जिन के वे सब एक हैं उन में वे बातें सहज से शीघ्र अधिक होती हैं इस में क्या सन्देह है। और दूसरे दिन भी थोडा सा अनुवाद अवश्य कर दिया था क्योंकि जिस को रोग होता है उसी को निदान और पथ्य आदि करना आवश्यक हैं निरोगी के लिये नहीं। जब हम लोग थियो-सोफिष्टों को भी आर्यसमाज के अवयवभूत शाखास्थ भ्रातृगणवत् मानते आये थे, और जहां तक बनेगा मानेंगे, ऐसा जानकर उनको आर्यसमाज में मिलाने और उन से १०) रुपए फीस लेने आदि के लिये प्रयत्न न किया था और अब नहीं करते, उनसे यथाशक्ति प्रेम और उनका उपकार ही करते हैं, हां जो कोई आर्यसमाज वा सुसायटी से भिन्न हैं वे उपदेश से समझ कर वेदमत में अपनी प्रसन्नता से स्वयं मिलते जाते हैं तो हम लोगों के लिये वह निषेध करना भी औषध नहीं क्योंकि हम में वह रोग ही नहीं है। अब आप लिखती हो कि सिवाय आप के और बम्बई, लाहौर और अन्यत्रस्थ भी आर्यसामाजिक लोग हमारी सुसायटी में हैं, परन्तु हमने उन से सरीख होने को कभी नहीं कहा यह बात सच नहीं। क्योंकि आपने बम्बई में मुन्शी समर्थदान आदि, प्रयाग में पंडित सुन्दरलाल आदि आर्यसभासदों को सुसायटी में मिलने को अवश्य कहा था। इस का साक्षी मैं ही हूं क्योंकि मेरे विना सुने मुझ को खबर भी नहीं थी और जैसे मेरा नाम सुसायटी के सभासदों में लिखती हो वैसा अन्यत्र भी आप ने किया होगा इस में कुछ सन्देह नहीं! और जो बात आप आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध प्रत्येक धर्म के लोगों की प्रतिष्ठा और सब धर्म वाले हमारी सुसायटी में मिलें और उनके धर्म पर हम हाथ नहीं डालते हैं किन्तु एक भाईपन होने के लिये शामिल करते हैं और कोई बात उसकी थियोसोफीष्ट होने में निषेधक नहीं होसकती। अब मैं इसमें आपसे पूछता हूं कि आपका धर्म क्या है? जो आप कहें कि हमारा धर्म सबसे विरुद्ध है तो दूसरे धर्म वाला आपकी सुसा-यटी में कभी नहीं मिल सकता। जैसा रात दिन का विरोध है वैसे विरुद्ध धर्म होते हैं। और जो कहें कि हमारा धर्म किसीसे विरुद्ध नहीं तो उसमें मिलना किस

लिए हो क्योंकि वे एक ही हैं। जैसे मुसलमान अपने मजहब से भिन्न को काफिर और उनसे मेल कभी न करना चाहिये कहते हैं, इत्यादि धर्म वाले लोग आप की सुसायटी में कैसे मिल सकते हैं। जो वे भ्रातृभाव से अन्य मत वालों से आत्मा और मन करके प्रीति करते हैं तो उन का धर्म जाता है और अपना रक्खें तो आप का नहीं रहता। एक चित्त से एक समय में दो बातें हो ही नहीं सकतीं, इत्यादि बातों के उत्तर लिखियें गी। और विशेष इस विषय में जब सन्मुख बैठ के परस्पर हम आप बातें करेंगे तभी निश्चय होगा। क्या यह बात सर्वथा असंभव नहीं है कि स्वामी जी भी अढाई वर्ष से हमारे सब से उत्तम सभासदों में एक हैं। भला आप कहिये तो कि मैंने आप की सुसायटी का सभासद् होने के लिये कब दर्खास्त भेजी थी? और मैंने कब आप से कहा था कि मैं आप की सुसायटी का सभासद् होना चाहता हूं? क्या मैंने जो बम्बई में चिट्ठी भेजी थी उस बात को भूल गई कि जो मैं सिवाय वेदोक्त सनातन आर्य्यावर्त्तीय धर्म के अन्य सुसायटी, समाज वा सभा के नियमों को स्वीकार न करता था, न करता हूं, न करूंगा क्योंकि यह बात मेरे आत्मा की दृढ़तर है; शरीर, प्राण भी जायें तो भी इस धर्म से विरुद्ध कभी नहीं हो सकता। हां यह अपराध आप लोगों ही का है कि विना कहे सुने सुनाये अपनी इच्छा से आप ने मेरा नाम कहीं अपने सभासदों में लिख लिया होगा सो क्यों कर सच हो सकता है। और इस बात को क्या भूल गये कि मेरठ में मूलजीठाकरसी के सामने जहां आप भी सामने बैठी थीं एच्‌एस करनेल ओलकाट साहब को मैंने कही थी कि आप ने बम्बई की कौशल में मेरा नाम सभासदों में क्यों लिखा, ऐसा काम आप लोग कभी मत कीजियेगा कि जिस में मेरी सम्मति न हो और आप अपने मन से कर बैठोगे तो मैं उस बात का स्वीकार कभी न करूंगा। उस पर करनेल ओलकाट साहिब ने कहा था कि हम ऐसा काम कभी न करेंगे। और बम्बई में मैंने चिट्ठी भी दी थी कि मेरा नाम आप ने अपनी इच्छा से जहां कहीं सभासदों में लिखा हो काट दीजिये। इतने हुए पर फिर भी आपने इस चिट्ठी में जो यह बात लिखी इस को कोई भी सच कर सकता है? क्या आश्चर्य्य की बात है? आये तो विद्यार्थी और शिष्य बनने को, गुरु और आचार्य्य बनना चाहते हो। ऐसी पूर्वाऽपर विरुद्ध बातें करना किसी को योग्य नहीं। जो आप ईश्वर को कर्त्ता, धर्त्ता नहीं मानती हो। सो बात इसी संवत् १९३७ के भाद्र महीने की है। इस के आगे आप ने मुझ से कभी न कहा और न किसी से मैंने सुना था कि आप ईश्वर को वैसा नहीं मानती हो, सिवाय काशी के समागम में प्रमोदादास मित्र और डाक्टर लाजरस साहिब के। क्या आप ने काशी में डाक्टर टीबो साहिब आदि के सामने कोठी के बाहर चौतरे पर श्याम को बैठे थे जब प्रमोदादास मित्र ने मुझ से कहा था कि मेडम तो अनीश्वरवादिनी, नास्तिकिनी है तब मैंने उन को उत्तर दिया था कि मेडम साहिब की बात

को तुम समझे न होगे। और दामोदर से मैंने कहा था कि मेडम साहिब ईश्वर को मानती है वा नहीं तब दामोदर ने आप से पूंछ कर मुझ से कहा था कि मानती है। क्या यह बात भी झूंठ है? और मेरी बात अद्भुत भेद करने वाली आप की ओर नहीं किन्तु आप की बातें मेरी ओर भेद करने वाली हैं। मैं आप को भगिनी वा मित्र के समान जानता था, जब तक कोई ऐसा विशेष कारण न होगा तब तक जानूंगा भी, क्योंकि मैं और जितने सज्जन आर्य्य हैं वे जैसा सदा से मानते आए हैं और मानेंगे भी कि सामान्यतः आर्य्यावर्त्तीय इङ्गलण्ड और अमरीका आदि भूमण्डलस्थ देशनिवासी मनुष्यों को सब दिन से भ्रातृ और मित्रवत् मानना है परन्तु सत्यधर्म व्यवहारों के साथ, असत्य और अधर्म के साथ नहीं। यहां के अँगरेज लोग आर्य्यों को चाहे वैसा मानें। क्या वे राजाधिकारी हों वा व्यावहारिक हों मुझको भी अपनी समझ के अनुकूल यथेष्ट मानें। मैं तो सब मनुष्यों के साथ सुहृद्भाव से सदा वर्तता आया और वर्तना चाहता हूं। और जो उनका यह कहना कि हम इसका कोई दृढ़ हेतु नहीं देखते कि स्वामी जी के अनन्तर और आर्य्यसामाजिकों से भी वैसा ही वर्त्तें। यह उनका कहना तब तक है कि जब तक वे आर्य्यावर्त्तस्थ आर्यों का पूर्व इतिहास, आचार, उन्नति, विद्या, पुरुषार्थ, न्यायवृत्ति, आदि उत्तम गुणों और वेदादि शास्त्रों के सत्य २ अर्थों को न जानेंगे परन्तु कालान्तर में उनका यह भ्रम अवश्य छूट जायगा। तथापि मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं कि जो हमने आपस के विरोध, फूट, अनाचार करने, और जैन और मुसलमान आदि की पीड़ा और भ्रम जाल से कुछ २ अलग स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता प्राप्त की है कि जिससे मैं वा अन्य सज्जन लोग अपना २ सत्य अभिप्राय युक्त पुस्तक रचने, उपदेश करने और धर्म में स्वाधीनपन से आनन्द में प्रवृत्त हो रहे हैं। क्या जो श्रीयुतभारतेश्वरी महाराणी, पारलीमेन्ट सभा और आर्यावर्त देशस्थ राज्याधिकारी धार्मिक विद्वान् और सुशील न होते तो क्या मेरा वा अन्य का मुख प्रफुल्लित होकर व्याख्यान वेदमत प्रचारक पुस्तकों की व्याख्या करनी भी दुर्लभ न होती, और आज तक शरीर भी बचना कठिन न था, इसीलिए पूर्वोक्त महात्माओं को हम लोग धन्यवाद देते हैं। आप लोगों को अवश्य स्मरण होगा कि जो काशी की चिट्ठी के उत्तर में आप लोगों ने लिखा था कि जो आप भी वेदों को छोड़ दें तो भी हम लोग कभी न छोड़ेंगे। यह आप लोगों की बात प्रशंसनीय और धन्यवादार्ह है। ऐसे ही सब योरूपियन इस उत्तम बात में मिलें तो क्या ही कहना है और जो कभी न मिलें हम आर्यों और आर्य समाजों की कदापि हानि नहीं होसकती, क्योंकि यह बात नवीन नहीं है। हम लोग जब से सृष्टि और वेद का प्रकाश हुआ है उसी समय से आज पर्यन्त उसी बात को मानते आते हैं। क्या हुआ कि अब थोड़े समय से अपनी अज्ञानता और उत्तम

उपदेशकों के विना बहुत से आर्य्य वेदोक्त मत से कुछ २ विरुद्ध और बहुत से अनुकूल आचरण भी करते हैं। अब जिसको प्रसन्नता हो अपनी और सब की उन्नति के लिए इस आर्यसमाज में मिलें वा न मिलें। उनके न मिलने से हमारी कुछ हानि नहीं किन्तु उन्हीं की हानि है। हम लोगों का तो यही अभीष्ट, यही कामना और यही उत्साह है कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी। और ऐसे तो कोई भी कह सकता है कि फलाने केसी मेरी सी सम्मति वा बड़ा विचार फलाने का नहीं है। फलाना ईश्वर को कर्त्ता धर्त्ता मानता है इस लिये उससे हम प्रेम क्यों करें। परन्तु यह बात आपकी सुसाइटी का मुख्य उद्देश्य जो सबको बन्धुवत् जानना आप कहते हैं उसको काट देती है। शोच कर देखिये कि हानि के कारण किनकी ओर हैं। हमारा तो संसार का उपकार करना और हानि किसी की न करना मुख्य तात्पर्य है,सो है ही है। यहां हम भी कह सकते हैं कि जो थियोसोफीष्ट आर्यसमाजों से विरोध करेंगे तो हमारी कुछ भी हानि नहीं किन्तु वे आप ही अपने भ्रातृभाव मुख्य उद्देश्य को नष्ट कर अपनी हानि कर लेंगे। हम तो हमारा स्वभाव जो कि धर्मात्माओं से सुहृद्भाव और अधर्मियों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न और बन्धुवत् स्नेह करना है करते हैं और करते रहेंगे जितना कि हम कर सकते हैं (अब अपना पूर्वापर व्यवहार को समझ कर जैसा हित हो वैसा कीजिए) एच् एस् करनेल ओलकाट साहेब आदि को मेरा नमस्ते कह दीजियेगी॥

स० १९३७ मि० मा० व० ६ मङ्गलवार (दयानन्द सरस्वती)

[५] ओ३म् [६६]

श्रीयुत करनेल एच् एस् आल्कट साहब तथा एच् पी मेडम ब्लेवस्तकी जी आनन्दित रहो॥

(१) प्रगट हो कि मेडम ब्लेवस्तकी का पत्र १७ जनवरी १८८१ का लिखा पहुँचा, वर्तमान विदित हुआ; उसका उत्तर लिखा जाता है। मैं सब काल में एक सी बात कहता हूं॥

(२) जो आपने अपना निश्चय न बदलाया होगा तो गुप्त रक्खा होगा, जब कि मूलजी ठाकरशी के साथ बात हुई थी। मैं जानता हूं उस समय आप ईश्वर को मानते थे, अब कुछ दूसरी बात पहिली बातों से विपरीत देखने में आती है जो कि आपने मेरठ में की हैं, और हम किसी से संसार भर में विरोध करना नहीं चाहते सिवाय उनके कि जो अधर्म और अन्यायायुक्त आचरण करें॥

(३) आर्यसमाज ठीक वैदिक मत पर है। उनके उद्देश में कुछ किसी प्रकार का फ़र्क़ नहीं है। और "भ्रातृभाव" जो कि आपका बड़ा भारी नियम है वह कभी पूरा २ नहीं वर्त्ता जा सकता, जब तक कि मज़हबी तास्सुब और

द्वेष बिलकुल दूर न होजावे। मैं जानता हूं कि आप फिर भी आर्यसमाज के नियम विषय में भूलती हो। पहिले भी कहा गया था कि आर्यसमाज के नियम से दूसरी किसी सभा के जो नियम मिलते हैं वे उसके अनुकूल ही है, उससे विरुद्ध कैसे अनुकूल होसकते हैं? दो बातें जो परस्पर विरुद्ध हों कैसे सत्य हो सकती हैं? यह प्रत्यक्ष है कि उन दोनों में से एक ही सत्य होगी, अर्थात् सत्य के विरुद्ध झूठ, और झूठ के विरुद्ध सत्य सदैव होता है॥

(४) और आप बार २ लिखती हैं कि "पोप" के भी ऐसे ही नियम थे, सो पोप और आर्यसमाज के नियमों में पृथ्वी, आकाश का अन्तर है। आर्य्यों के नियम विद्यामृत के अनुसार और पोप के नियम विद्या से विरुद्ध, स्वार्थ से भरे हुए हैं, और जो ऐसे ही विना विचारे कोई आपके नियमों को भी कह देवेगा तो आप क्या उत्तर दे सकेंगी॥

(५) सन् १८७९ में करनेल आल्कट साहब से सहारनपुर में हमने कह दिया था कि हमारे पास कोई अङ्गरेज़ी का पूरा २ विद्वान् नहीं है इसी लिए हमको अङ्गरेज़ी चिट्ठी के उत्तर देने में कठिनता होती है इस कारण अङ्गरेज़ी पत्रों का उत्तर आप ही दिया करें, और जिसका उत्तर हम से चाहें उसको नागरी कराके हमारे पास भेजा करें, क्योंकि मैं एक ही भाषा का उपदेशक हूं दूसरी भाषा में कठिनता पड़ती है। जब कर्नेल आलकट साहब जेनेरल कौंसिल में मेरे प्रतिनिधि थे तो फिर मेरा नाम लिखने में क्या आवश्यकता थी, जो चाहते वे करते॥

(६) चाहे कोई हो जब तक मैं न्यायाचरण देखता हूं मेल करता हूं और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है फिर उससे मेल नहीं करता, इस में हरिश्चन्द्र हो वा अन्य कोई हो॥

(७) और कोई मुख्य बात मुझको विस्मरण नहीं हुई। और जब डिप्लोमा आया था उसका यही प्रयोजन था कि थियोसोफ़िकल सुसाइटी आर्यसमाज की शाखा होना चाहती है। अब वह बात वैसी नहीं रही जैसी की तब थी, इस लेख का क्या प्रमाण होसकता है, और जब तुम्हारा डिप्लोमा आया तो हम ने उसकी पहुँच लिखी थी, न यह कि हम तुम्हारे सभासद् होगए॥

(८) बस, जैसा आप दुष्टजनों को सभासद नहीं करते वैसे ही आर्यसमाज भी नहीं करता, आर्य्यसमाज के नियमों में देख लो कि "सबसे प्रीति पूर्वक धर्म्मानुसार यथा योग्य वर्त्तना चाहिए" यह नियम पड़ा है वा नहीं?

(९) और मैं कोई नवीन मत चलाना नहीं चाहता किन्तु सनातन वेद मत का प्रकाश करता हूं। जो न मानेगा उसकी हानि होगी मेरी कुछ हानि नहीं। जैसी मुझसे आप सत्यभाव से प्रीति रखते हैं वैसे ही मैं भी रखताहूँ। और आपसे क्या सब सज्जन पुरुषों से मेरी वैसी ही प्रीति है।

(१०) और परस्पर संसार की उन्नति करने में सहायक होना ही बहुत अच्छी बात है। और मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूं। सिवाय उपदेशक के और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता। तुम मुझ को कहीं सभासद् लिख देते हो, कहीं कुछ लिख देते हो; मैं कुछ बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहता, और जो मैं चाहता हूं वह बहुत बड़ा काम है, सो आशा है कि ईश्वर की दया, और सज्जन तथा विद्वानों के सहाय से कृतकृत्य हूंगा॥

अब जो कर्नेल आलकट साहब ने लिखा था उसका उत्तर यह है कि मुझ को अवकाश बहुत कम है, जब मैं मुम्बई आऊँगा तब आप को कुछ अवकाश दूँगा, वा जब वेदभाष्य पूरा होजायगा तब अवकाश मिलेगा, अब आप आए और कार्य्य सिद्ध न हुआ तो क्या लाभ होगा॥ और दामोदर से कह दीजिये कि सेवकलाल कृष्णदास ने हमारी रजिस्टरी चिट्ठी का उत्तर नहीं भेजा सो उससे पूछें कि क्या कारण है। जैसा वह कहे हमको लिख भेजें॥

और सबसे नमस्ते कह दीजिये॥ आज हम भरतपुर से जयपुर जाते हैं।

भरतपुर }
१९. मा० १८८१ }

{ हस्ताक्षर
{ दयानन्द सरस्वती

---

[१] [६७]

(*From* PANDIT DAYANANDA SARASWATI *to* Mr JOSEPH COOK.)

WALKESHWAR, BOMBAY
January 18, 1882.

Sir,—In your public lectures you have affirmed—

(1) That Christianity is of Divine origin.

(2) That it is destined to overspread the earth.

(3) That no other religion is of divine origin.

In reply, I maintain that neither of these propositions is true. If you are prepared to make them good, and to ask the people of Aryavarta to accept your statements without proof, I will be happy to meet you for discussion. I name next Sunday evening at 5-30, at which time I am to lecture at Framji Cowasji Institute. Or, if that should not be convenient to you, then you may name your own time and place in Bombay. As neither of us speaks the other's language, I stipulate that our respective arguments shall be translated to the other, and that a short-hand report of the same shall be signed by us both. The discussion must also be held in the presence of respectable witnesses brought by each party, of whom at least three or four shall sign the

report with us ; and the whole to be placed in a pamphlet form, so that the public may judge for themselves which religion is most divine.*

दयानन्द सरस्वती

i. e. DAYANAND Saraswati.

---

[१] ओ३म् [६८]

श्रीयुत मान्यवर राव राजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।

आज पूर्व प्रेषित पत्रस्थ पूर्वकृत प्रतिज्ञानुसार आज से दसवें दिन पत्र लिखकर आपके पास भेजा था—मुझको निश्चय है कि आपने श्रीमान् प्रताप-सिंह जी तथा श्रीयुत केसरी सिंह जी की सम्मति मेरे बुलाने में अवश्य लेली होगी। और इन महाशयों के द्वारा श्रीयुत महोदय महाशय जोधपुराधीशों की भी अनुमति स्वीकृत करके लिखी होगी। अब आपके पूर्व लिखित पत्रस्थ प्रीति, उत्साह और परोपकार दृष्टि के अनुरोध से आपको मैं लिखता हूं कि यदि आप लोगों की ऐसी ही इच्छा है कि मुझको शीघ्र जोधपुर में बुलाना अँगीकृत है तो मैं भी आप महाशयों की इच्छानुकूल लिखता हूं कि इस पत्र के पहुँचने की मिति से आगे पांच दिन के भीतर पाली में सवारी के लिए दो रथ और एक सेज गाड़ी, दो ऊँट और एक हाथी और पुस्तकादि भार के लिए एक सवारी और दो सवार और आठ सिपाहियों का एक पहरा, पहरे के लिए भिजवा दीजिए। हमारे पास १० तथा १२ आदमियों से अधिक नहीं हैं।

और सवारी के साथ एक बुद्धिमान् पुरुष आना चाहिए कि जो पाली में सवारी रख, रेल में बैठ के मेरे पास शाहपुर में आजाय। परन्तु वह रूपाहेली के स्टेशन पर उतरे और दो दिन पहले शाहपुर में पत्र द्वारा खबर भेजदे कि जिससे शाहपुर से सवारी उनके लिए स्टेशन पर उपस्थित रहे कि वे रेल से उतर, सवारी में बैठ, शाहपुरा में आनन्द पूर्वक चला आवे। आपका भेजा हुआ माननीय पुरुष शाहपुरे में जिस दिन आवेगा उससे दो तीन दिन में यहां से यात्रा कर उचित समय पाली में पहुँचेंगे। जोधपुर में आके अत्यानन्द पूर्वक मैं आप लोगों से मिलूंगा। आगे मेरे ठहरने के लिए जहां तक हो सके बगीचे में स्थान होना चाहिए। न वह नगर से अति दूर, न अति निकट, जल वायु जहां का शुद्ध और एक मील से अधिक दूर और आध मील से कम दूर न हो। और

---

*यह पत्र 'पत्रव्यवहार' में छपा है, यह वही पत्र है जो ऋषि के अभि-प्रायानुसार कर्नल आलकट ने लिखा था, परन्तु इस में most divine शब्द कर्नल ने अपनी ओर से जोड़ दिया। इसका उल्लेख आगे ऋषि के एक विज्ञापन में आवेगा॥

पूर्वोक्त ऊँटों में एक सवारी का सांडिया और दूसरा साधारण। जब हम पाली में पहुँचेंगे तब उसको एक चिट्ठी इस बात की कि जिस स्थान में मेरा ठहरना हो, क्या २ सामग्री उपस्थित करनी होगी, पत्र लिखकर उस सांडिये सवार के हाथ आपके पास भेजी जाय, एक दिन पूर्व ही। जिसके अनुसार आप उस स्थान में बिछौना आदि का यथावत् प्रबन्ध कर दीजियेगा। इसका उत्तर शीघ्र भेजिये और सबसे मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति वैशाख अ० ४ गुरुवार

(दयानन्द सरस्वती)

---

[२] ॥ ओ३म ॥ [६९]

श्रीयुत रावराजा श्रीमान् तेजसिंह जी आनन्दित रहो—

श्रीमान् का पत्र संवत् १९४० वैशाखवदी ३ रविवार का लिखा मेरे पास बैशाखवदी ८ सोमवार को पहुंचा, जिसके साथ मुंशी दामोदरदास जी का भी पत्र था। वांचकर बड़ा ही आनन्द हुआ। मैं आनन्द पूर्वक जोधपुर आने का निमन्त्रण स्वीकार करता हूं। और श्रीमान् महाशय महोदय जोधपुराधीशों, श्रीमान् महाराजे श्री प्रतापसिंह जी तथा आपको अनेक धन्यवाद देता हूं कि जिन आप लोगों ने मेरे वहां जोधपुर में आने के लिये प्रीति प्रकाश की। अब मुझ को दृढ़ निश्चय इस बात से हुआ कि अब आर्य्यावर्त की उन्नति होने का समय आया है, जब श्रीमान् जोधपुराधीश आदि की वैदिक सत्य धर्म और सनातन राजनीति पर प्रीति हुई है। पुनः हम लोगों के सौभाग्य के उदय होने में कुछ सन्देह नहीं। और इस बात से परम आनन्द हुआ कि जो मुंशी दामोदरदास जी ने आपकी उन्नति होने का विषय लिखा। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से मैं प्रार्थना करता हूं कि आपलोगों की उन्नति कृपा कटाक्ष से सदा किया करें, और स्वदेशोन्नति में आप सब लोगों को दृढ़ोत्साही करके आप लोगों के द्वारा सब आर्य्यावर्त देश की वढ़ती कराके इस महा पुण्य कीर्ति के भागी आपलोगों को करे।

(१) मैं आज से १० दश वा १५ पन्द्रह दिन में दूसरी चिट्ठी आप को लिखूंगा कि जिसमें पाली के स्टेशन से जोधपुर आने में जितनी वा जैसी सवारी भेजनी, व जो २ उचित प्रबन्ध होना योग्य होगा, लिखूंगा। उसी के अनुसार प्रबन्ध आप कर देवेंगे।

(२) यहां श्रीमान् महाराजाधिराज मनुस्मृति का राजधर्म पढ़ रहे हैं। सात आठ दिन में पूरा हो जायगा। और ५ पांच सात दिन एक राज में और दूसरा पुण्डरीक जीके यहां अग्नि होम का प्रारम्भ होगा उस में उचित उपदेश वा विधि बतलाने में लगेंगे।

(३) मैं अनुमान करता हूं कि गत दिन आप का पत्र शाहपुराधीशों को दिखलाया। उस से अनुमान होता है कि जोधपुर में शीघ्र आने में सम्मीत कठिनता से देंगे। सम्मति शीघ्र होने के लिए यह उपाय है कि जब मेरा दूसरा पत्र आपके पास आवे तभी आप किसी योग्य पुरुष को यहां भेज देवें। वे कहेंगे और पश्चात् मैं भी विशेष कहुंगा तो आशा है कि मान जावेंगे, क्योंकि शाहपुराधीश बड़े बुद्धिमान् हैं। इसमें आप २० दिन के भीतर समय का विलम्ब है कि इसी समय में मेरा पत्र वहां आता और वहां से योग्यपुरुष का यहां आना मेरी सम्मति है। अधिक विलम्ब होना मैं भी उचित नहीं समझता।

(४) मैं जैसा सत्य धर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने म प्रसन्न होता हूं वैसा किसी अन्य बात पर नहीं, क्योंकि यही मनुष्य जन्म, विद्वान्, राजा वा धनाढ्य पुरुष होने का मुख्य फल है, जिस को कि आप लोग तन मन धन और पुरुषार्थ से करना चाहते हैं और यह आप लोगों ही का कर्तव्य कर्म है। अब परमेश्वर ने चाहा तो थोड़े ही समय में मैं और आप लोग समक्ष होकर जोधपुर में आनन्दोन्नति करने में प्रवर्तमान होंगे। मेरी ओर से महाराजे श्री प्रतापसिंह आदि से आशीर्वाद कह दीजियेगा। अलमतिविस्तरेण।

वैशाख वदी ९ भौम संवत् १९४०

दयानन्द सरस्वती
शाहपुरा राज मेवाड

---

[३] ओ३म [७०]

श्रीयुत् राव राजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो—

मुन्शी दामोदरदास जी का ता० २७ मई का लिखा पत्र हमारे पास पहुंचा, समाचार विदित हुआ। उन के पास इस लिये नहीं भेजा कि वह भागा-से होगा। आपने पाली में सवारी आदी मुन्शी दामोदरदास और बारहट अमदनि जी को भेजा और पाली में सवारी छोड़कर शाहपुरा में आने की आज्ञा दी, एक डेरा भिजवाया और मेरे रहने के लिये बाग में बँगला नियत किया, बहुत अच्छी बात की। यह पुरुषार्थ सब आप ही लोगों का है इस लिये श्रीमान् योधपुराधीशों, महाराजा श्रीमान् प्रतापसिंह जी, श्रीयुत् महाराजा भतीजा फतेसिंह जी और आप आदि को अति प्रीति से आशीर्वाद और बहुत धन्यवाद देता हूं, इसको स्वीकार कीजिये। और यहां श्रीयुत् महाराजा-धिराज शाहपुराधीशों ने रुपाहेली स्टेशन पर ता० २६ मई के दिन आप के भेजे हुए पुरुषों के लिये सवारी उपस्थित कर देना स्वीकार कर लिया है, सो उसी तारीख को वह सवारी पहुंच जायगी और जब आपके भेजे पुरुष यहां

पहुंचेंगे तत्पश्चात् मैं भी यहां से चल कर उचित समय पर जोधपुर पहुंच के आप लोगों से अत्यानन्द पूर्वक मिलूंगा और मैं इसी बात से प्रसन्न हूं कि जो मुझ से आप लोगों का यत्किंचित् उपकार हो और आप लोग मुझ से आनन्द पूर्वक उपकार ग्रहण करें क्योंकि जो कुछ अपने आर्य्यावर्त देश की उन्नति है सो सब आपही लोगों के द्वारा अवश्य हो रही है और होगी। अन्य किसी के द्वारा नहीं, क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा, यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुर्वतते ॥ १ ॥ राजा और राजपुरुषों के सत्य धर्मयुक्त उत्तम पुरुषार्थ ही से सब को सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं, अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥ अन्य सब सज्जनों से मेरा आशीर्वाद कहियेगा। और पाली में हाकिम के नाम ऐसा तार भेज दिया है कि ता० २६ मई को रूपाहेली के स्टेशन पर सवारी उपस्थित होगी।

मि० वै० सु० १३ सोमवार सम्वत् १९४०

(दयानन्द सरस्वती)

शाहपुरा

---

[४] ओ३म् [७१]

श्रीयुत राव राजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।

(१) यहां ओषधी का एक पत्र कि जिस में चौंतिस ओषधियां हैं,जिस में से कई परीक्षित और कई अपरीक्षित हैं,सो भेजते हैं। आप सम्भाल लीजिये और जो किसी में शंका रहे तो पूछ लीजिये।

(२) आज सन्ध्या को उसी पूर्वोक्त काम के लिए मुन्शी जी को भेज दीजिए।

(३) एक चमड़े की बेग जो कि उस चोर ने दो ठिकाने से काट दी है यदि किसी कारीगर से एक दिन में सुधरवा दें तो आप के पास भेज देवें। परन्तु विलंब एक दिन के सिवाय न हो तो, अर्थात् शनिवार को अवशय मिल जाय। यदि ऐसा न हो सके तो आगे बनवा लेंगे।

(४) यहां से पाली तक सवारी का प्रवन्ध जैसा आप ने किया हो वैसा किसी पुरुष द्वारा वा पत्र लेख से मुझ को आज विदित कर दें। सवारी का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जैसे पहले और तो सब सवारी ठीक थी परन्तु असवाव की गाड़ी के बैल बिगार के थे, वहुत पीछे रह जाती थी। अब के ऐसा न होना चाहिये किन्तु सवारी और असबाब की गाड़ी बराबर चलें और बैल अच्छे जुतवाने चाहियें कि सवारी के बराबर चले जायें।

(५) अमरदान जी के मुख से सुना कि महाराजे प्रतापसिंह जी ने अमरदान जी से कहा कि हम बारह घण्टों में पाली को पहुंचादेंगे सो आप पूछ के उत्तर लिखिये कि वह क्या सवारी होगी।

(६) जो मेरे साथ के मनुष्य और पुस्तकादि असबाब जावेंगे उस के साथ आप के सुपरीक्षित दो सवार और एक वा दो मेरे साथ। तथा असबाब के साथ पहरा अच्छा भेजना चाहिये जैसा कि आप के पूना जाने के पश्चात् मुरदावली और एक दो अच्छे सिपाही का पहरा यहां विना आठ दिन की बदली के रक्खा था, उस का प्रतिफल चोरी हुआ, इस लिए पहरा और सवार भेजाना चाहिये, जो की होशियारी से पाली तक अच्छे प्रकार पहुंचाए। यह मैंने आप को स्मरण दिलाने के लिए लिखा है। निश्चय है कि आप स्वयं अच्छा प्रवन्ध करेंगे। इन सब बातों का प्रत्युत्तर आज ही मेरे पास भेज दीजिए॥

(७) और जो सन्ध्या का अनुवाद अँग्रेजी का गुटका आप ले गए थे वह भिजवा ही दीजिए। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। मिति आश्विनबदी ११ बृहस्पतिवार सम्वत् १९४०

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राजमारवाड़

यह औषधियों का खरड़ा श्रीमान् योधपुराधीश और महाराजे प्रताप सिंह जी को भी दिखला देना।

---

[५] ओ३म [७२]

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो—

अब तक सवारी का आपने क्या प्रबन्ध किया? इसका हाल अब तक मैंने कुछ भी नहीं पाया। यदि आपसे डाक का वन्दोवस्त न हो सके तो चार सवारी और बढ़ा देनी होंगी। २ सांढिये, एक बड़ा रथ कि जिसमें मैं अच्छी तरह बैठ के जासकूँ और एक रथ, अथवा हाथी, अर्थात् जितनी सवारी आती समय थीं उतनी ही होंगी, तव निर्वाह होगा; क्योंकि आज हरद्वार के पास के दो आदमी और आगए हैं। सब की गिनती यह है—

अर्थात् सब सवारी इस प्रकार से करेंगे तो अच्छा होगा। तीन रथ, एक सेजगाड़ी १, दो ऊंट २, और एक हाथी १, अथवा ४ चौथा रथ, एक पहरा जिस में छः जवान और सातवां हवलदार और दो सवार। इसी प्रकार का पत्र मैंने आप के पास परसों भेजा था। और तीन पत्र गत रविवार के दिन जिन को आज सात दिन हुए अमरदान के हाथ भेजे थे वे भी पहुंचे होंगे जिन में से एक श्रीमान् जोधपुराधीश, दूसरा महाराजे प्रतापसिंह जी और तीसरा आप के पास। यह इस लिए आप को चिताया था कि आप सहज में प्रवन्ध करलें और जब मुन्शी दामोदर दास् आवें तब इन का प्रबन्ध सब करा दीजिये और कल ४ चार बजे सन्ध्या के मेरे पास उपरिलिखित सवारी आदि आजायें कि जिन को मैं देख लूं पश्चात् विदित किया जाय क्योंकि परसों यहां से यात्रा

अवश्य होगी। और यह पत्र महाराजे प्रतापसिंह जी को भी सुना दीजिए । अलमतिविस्तरेण माननीयवरेषु॥

मिती अश्विन वदी १३ शनौ सं० १९४०

{ दयानन्द सरस्वती
{ जोधपुर राज मारवाड़

[१] [७३]

बाबू कृपाराम स्वामी आनन्दित रहो। जो आपने ब्राह्मी ओषधी का पारसल भेजा सो पहुंचा। अब जब तक हम न लिखें तब तक मत भेजियेगा। यहां सब प्रकार आनन्द है। ३ तीन दिन के पश्चात् वार्षिक उत्सव आर्य्य समाज का ७ सातवां होगा। दानापुर से तीन सभासद् यहां उत्सव पर आवेंगे, और आर्य्यसमाज का स्थान भी थोड़े ही दिनों में बन जायगा । सब सभासद् भी प्रसन्न हैं। वहां की जो लिखने के तुल्य बातें हों, लिखते रहना। से हमारा आशीर्वाद कहना। मि० चै० व० १३ शुक्र सं० १९३८

[दयानन्द सरस्वती]

[१] [७४]

सर्व आर्य्यसमाजस्थ प्रधानादि आनंदित रहो।

विदित हो कि स्वामी सहजानंद सरस्वती उपदेशक इसने संन्याश्रम धारण भी मुझ से किया है, आता है। इसको जब तक वहां रहे अन्न स्थानादि, और जब एक समाज से दूसरे समाज को जाय तब रेल के भाड़े आदि से सत्कार किया करना। जिस समाज से दूसरे समाज को जाना चाहे उस समाज का मन्त्री दूसरे समाज के मन्त्री के पास पत्र भेज देवे कि वह स्टेशन पर आके निवास स्थान को ले जावे । मिती फाल्गुण वदी १२ मंगल सम्वत् १९३९* ।

ह० दयानन्द सरस्वती,
चितौड़-मेवाड़ ।

[१] [७५]

मुंशी इन्द्रमनजी आनन्दित रहो—आपके दो तीन पत्र आये हाल मालूम हुआ। पञ्जाब के अढ़ाई सौ या तीन सौ रुपया आपके पास शायद पहुंचे होंगे। आज हम यहां के सभासदों से दर्याफ्त करेंगे कि रुपया भेजे या नहीं। अगर न भेजे होंगे तो हम भिजवाते हैं। चार दिन हुए कि उसी वक्त हम ने उनसे कह दिया था कि रुपया भेज दो। अढ़ाई सौ रुपया वहां हैं और १००) रुपया लाला श्यामलाल के और पञ्जाब और फरुखाबाद से भी आते हैं। सब मिलकर सात सौ रुपया इकट्ठे होंगे। खूब होश्यारी से काम करना। मिति भाद्रपद कृष्ण ६ गुरुवार संवत् १९३७ स्थान मेरठ।

दयानन्द सरस्वती

---

*भारत सुदशा प्रवर्तक फरवरी १८८४ पृ० १८ से नकल किया गया।

[१] [७६]

मन्त्री और सभासद् आनन्द रहो !

प्रकट हो कि अब हम ११ जुलाई सन् १८७८ बृहस्पति वार को यहां से पूर्व की ओर प्रस्थान करेंगे, और जालन्धर, लुध्याना आदि नगरों में मिलते हुए आगे को चले जावेंगे। सम्भव है कि दो चार दिन के लिये अम्बाला ठहर जावें। अब हमारा और आप लोगों का मिलाप केवल पत्र द्वारा ही हो सकेगा। इसलिये आप सदा पत्र भेजते रहना, तथा हम भी भेजा करेंगे। अब आपको लिखते हैं कि प्रतिदिन समाज की उन्नति करते रहो क्योंकि यह बड़ा काम आप लोगों ने उठा लिया है, इसके परिणाम पर्य्यन्त पहुंचाने ही में सुख और लाभ है। यहां का समाज प्रतिदिन उन्नति पर है और कई प्रतिष्ठित पुरुष सभासद् हो गये हैं। यहां के पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिये सलाह की थी, सो वे सभा में न तो कुछ बोले, न कुछ बात का उत्तर दिया, केवल मुख दिखला कर चले गये। और यहां के लोगों ने जो कई पोपों की ओर थे, हाकिम से आर्य्यसमाज की चुगली खाई थी, जिसका परिणाम सत्य के प्रताप से यह हुआ कि अब कोई आर्य्यसमाज की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। सब सभासदों को नमस्ते। २६ जून सन् १८७८ *।

दयानन्द सरस्वती अमृतसर।

[१] [७६]

॥ विज्ञापनम् ॥

सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उन के अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं विरुद्ध बातों को नहीं॥ इस से जो जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रंथों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं॥ वे उन उन ग्रंथों के मतों को जनाने के लिये लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं जो जो बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूं क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है॥ और जो जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनिमुनिपर्यंत महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रंथ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादि-कों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे॥ तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरेभये पित्रादिकों का तर्प्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इस के स्थान में ऐसा समझना चाहिये

* यह पत्र मन्त्री आर्य्यसमाज गुजरांवाला को लिखा गया था। हमने इसे श्रीमान् पं० लेखरामजी रचित ऋषि जीवन के पृ० ३३४ से लिया है।

कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो जो मर गये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि ने दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेदमँत्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहां देखलेना* ॥

[२] ——— [७८]

विज्ञापनपत्र.

—:०:—

आगे यह विचार किया जाता है कि, संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिये: सो बिना व्याकरणके नहीं होसकती. जो आज कल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रंथ प्रचलित हैं, इनसे न तो ठीक ठीक बोध और न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत होता है, वेद और प्राचीन आर्ष ग्रंथों के ज्ञान से विना किसी को संस्कृत विद्याका यथार्थ फल नहीं हो सकता: और इसके विना मनुष्यजन्म का साफल्य होना दुर्घट है॥ इसलिये जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनीय अष्टाध्यायी महाभाष्यनामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी सुगम संस्कृत और आर्य्यभाषा में वृत्ति बनाने की इच्छा है: जैसे वेदभाष्य प्रतिमास २४ पृष्ठों में १ अंक छपावता है, इसी प्रकार ४९ पृष्ठ का अंक मुम्बई में छपवाया जाय तो बहुत सुगमता से सब लोगों को महालाभ हो सकता है, इस में हजारों रुपये का खर्च और बड़ा भारी परिश्रम है ॥ इसका मासिक मूल्य जो प्रथम दें उनसे ॥=) आने के हिसाब से ७॥ रुपये लिये जायें. उधार लेने वालों से ॥।≡) के हिसाब से ११। लिये जायें. विद्योत्साही सब सज्जनों की सम्मति प्रथम में जाना चाहता हूं, सो सब लोग अपना अपना अभिप्राय जनावें इति ॥*

———

*यह विज्ञापन ऋग् और यजुर्वेद भाष्य के अंक १ और २ के टाइटल के पृष्ठ पर छपा है। इस से यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३९ मास श्रावण में लिखा होगा ॥

*यह विज्ञापन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अंक १५, १६ के आन्तिम पृष्ठ पर छपा है, और संभवतः चैत्र संवत् १९३२ के अन्त या वैशाख के प्रारंभ में लिखा गया था । तब स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर में थे । पंजाब छोड़ने के अनन्तर उन्हों ने वृत्ति बनानी आरंभ कर दी थी । वृत्ति की समाप्ति अनुमानतः सं० १९३६ तक होगई । परन्तु ग्राहकों के अभाव से यह अब तक अप्रकाशित पड़ी है । हमने इसका अधिकांश भाग पढ़ा है, और कह सकते हैं कि गून्थ अपूर्व है इसी के आधार पर पीछे वेदांगप्रकाश बना ॥

विज्ञापनपत्रमिदम्

सब सज्जन उदार आर्य लोगों को विदित किया जाता है कि जो फीरोजपुर में अनाथाश्रम कई एक वर्षों से आर्य्यसमाजों ने स्थापित किया है यह बड़ा प्रशंसित और धर्म का काम है और इस में बड़े सहाय की अपेक्षा है इस लिये आप सज्जन लोगों को उचित है कि इसका सहाय करना क्योंकि इसके होने से आर्यलोग जिन का पालन करने वाला कोई न होवे वे ईसाई वा मुशलमान अथवा अन्य मत में वेदोक्त सनातन धर्म से छूट के मिल जाते थे उनकी रक्षा के लिये यह अनाथ पालनार्थ सभा नियत की है जिस प्रकार अर्थात् धन के सहाय करने से इसका दीर्घायु हो वैसे यत्न करने चाहिये॥

॥ अलमतिविस्तरेणौदार्य्यादिगुणयुक्तेषु ॥

ह० दयानन्द सरस्वती

[४] [८०]

॥ विज्ञापन ॥

सब सज्जन लोगों को विदित होकि ठिकाना ज़िले अलीगढ़ परगना मौरथल ग्राम छलेश्वर ठाकुर मुकुन्दसिंह ठाकुर मुन्नासिंह रईस तथा ठाकुर भूपालसिंह ऐरव रईस को हमने वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकों के मूल्य वसूल करने का अधिकार दिया है अर्थात् इनके नाम मुखित्यारनामा रजिस्टरी कराके दिया है। इनमें से ठाकुर मुन्नासिंह के नाम पूर्वोक्त ठिकाने वेदभाष्यादि पुस्तकों का मूल्य भेजें वे ग्राहकों के पास रसीद भेज देवेंगे। जो कोई पुस्तक लिया चाहे वह भी मुन्नासिंहजी के नाम पत्र भेजे वा इस विषय में जो कुछ लिखना आवश्यक हो सो भी लिखें। और जो अङ्क ५वें में पण्डित उमरावसिंहजी के नाम से नोटिस दिया था सो अब नहीं रहा। अब मैं सब ग्राहकों से प्रीति पूर्वक सूचना करता हूं कि जैसी प्रीति से इस काम में पुस्तक लेके सहायक हुए हैं वैसे मूल्य भेजने में भी विलम्ब न करें। क्योंकि अब जो मुखतियार किये हैं वे जिस उपाय से मूल्य वसूल होगा वह २ उपाय करके शीघ्र वसूल करेंगे। और जो अंक ५वे में नोटिस दिया था कि उधार वाले ग्राहकों के पास ६ अंक नहीं भेजा जायगा सो भी नहीं रहा क्योंकि जब तक ग्राहक अपनी खुशी से बंध न करावेगा तब तक बराबर पहुंचता रहेगा। जो ग्राहक वर्ष की आदि में पहिले ही मूल्य भेज देंगे उनसे प्रत्येक वेद का वार्षिक मूल्य ४) रु० लिये जायंगे और जो प्रथम न भेजेंगे उनसे एक २ वर्ष के ४॥) रु० के हिसाब से लिये जायंगे। और जो ग्राहक अपनी प्रसन्नता से नहीं भेजेगा उससे डाक महसूल भी लिया जायगा। और हमारे इस काम में कोई मनुष्य क़िसी प्रकार की बुराई की है वा करेगा उसका भी प्रबंध पूर्वोक्त मुखतियार लोग यथोचित् करेंगे। जैसा कि बाबू हरिश्चंद्र चिन्तामणि ने बहुत से रु०

पुस्तकों की बाबत आये वे हमारे पास न भेजे न हिसाब ठीक २ दिया और सुना है कि विलायत को चले गये। जो नोटिस पहुंचने पर रुपये न भेज देंगे तो उन पर अब नालिश करनी पड़ेगी। हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती॥

[८१]

[१]

आर्य्यसमाज के सब सभासदों को स्वामी जी का आशीर्वाद पहुंचे। आगे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से प्रतिदिन अमृतसर आर्य्यसमाज का उत्साह वृद्धि को प्राप्त होता जाता है। १०० नियम का पुस्तक, (आर्य्योद्देश-रत्नमाला) भी आज कल छप के जिल्द बन्ध के तैयार हो जावेगा; पांच सौ पुस्तक लाहौर और पचास पुस्तक गुरुदासपुर को भेजे जावेंगे। और सम्वत् १९३४ भाद्रपद सुदी ६, गुरुवार ता० १३ सितम्बर सन् १८७७ प्रातःकाल ९॥ बजे की रेल में जालन्धर को जाना होगा, सो जानना। जो वेदभाष्य पर विरुद्ध सम्मति के उत्तर के पत्र छपवा कर मुम्बई आदि में भेज दिये जावेंगे, तथा समाचार पत्रों में छपवा दिये जांय, तो बहुत अच्छी बात होगी। आगे आप लोगों की जैसी इच्छा हो वैसा कीजियेगा। सं० १९३४, मिति भाद्रपद सुदी ३, सोमवार, ता० १० सितम्बर सन् १८७७॥

दयानन्द सरस्वती अमृतसर

[८२]

[२]

श्रीयुत मूलराज, जीवनदास, साईदास, बलदास जी आनन्द रहो। आगे रामरखा से पत्र मिल सकेंगे तो भेज दिये जांयगे वा नवीन लिखवा कर भेज देंगे। परन्तु जैसे आज पर्य्यन्त नहीं छपे, वैसे हो तो परिश्रम व्यर्थ है। जैसी अन्तरंग सभा के नियमों का झमेला आज तक पूरा नहीं हुआ है,ऐसा न हो। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि जो काम जिस समय करना चाहिये, वह उस समय में होने से सफल हो जाता है, इस लिये समय पर काम करना बुद्धिमानों का लक्षण है। यहां बहुत आनन्द में हम लोग हैं। आशा है कि आप लोग भी आनन्द में होंगे।

एक काम यह आवश्यक है कि इस मुन्शी से यह काम ठीक २ नहीं हो सकता। इस लिये एक मुन्शी अंग्रेज़ी, फारसी और नागरी भाषा का पढ़ा हुआ, हिसाब नकशा निकालना भी जानता हो, जो ऐसा न मिल सके तो अंग्रेज़ी, फारसी, उर्दू तो ठीक जानता हो कि चिट्ठी पत्र ठीक २ पढ़ और लिख सकें; वह आलसी न हो और जिसका स्वरू[illegible] किसी प्रकार बुरा न हो, उस का मासिक २५) रु० से अधिक न होना चाहिये। उस को आप चारों जने ध्यान से २५) रु० और बीस दोनों के बीच में निश्चित करके मुझ को लिखिये। यहां व्याख्यान नित्य होते हैं। समाज होने का भी कुछ २ सम्भव है।

मिति चैत्र ११ सम्वत १९३४, शनिवार, ता० २४ मार्च १८७८

दयानन्द सरस्वती

सम्पादक की अन्य पुस्तकें ॥

(१) ऋग्वेद व्याख्या ।

ऋग्वेद के अननुवादित भाग के अनेक मन्त्रों का ऋषि दयानन्द कृत भाष्य का क्रमवार संग्रह, भाग प्रथम । वेद मन्त्रों की अद्भुत व्याख्या संयुत, ऋषि के वेद भाष्य के अनेक सूक्ष्म तत्वों को समझाने वाली पुस्तक । स्वाध्याय के लिये उपयोगी ग्रन्थ । आर्यसमाज में वेद का व्याख्यान अभी कैसा हुआ है, यह इस पुस्तक की भूमिका के पाठ से ज्ञात होजायगा । सुन्दर कागज और छपाई पृ० सं० ५२ मूल्य ।-)

(२) ऋषि दयानन्द स्वरचित जीवन चरित्र ।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने कर्नल आल्काट के अनुरोध पर अपना कुछ जीवन चरित्र आप उन्हें लिखकर दिया था । वह कई स्थलों पर छपा मिलता था । जीवनचरित्र लेखक प्रायः उसे अपने ही शब्दों में दे देते हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से यह अच्छी बात नहीं । इसी विचार और ऋषि के प्रत्येक शब्द के शुद्ध रखने के विचार से इस पुस्तक का सम्पादन हुआ है। प्रत्येक आर्य्य को ऋषि जीवन उनके अपने शब्दों में पढ़ना चाहिये । मोटा अक्षर । छपाई कागज अत्युत्तम । पृ० सं० ६० मूल्य केवल ।)

५) पांच रुपये की पुस्तकें एक साथ लेने वालों को १०) प्रति सैकड़ा और १०) रु० की पुस्तकें एक साथ लेने वालों को १५) प्रति सैकड़ा कमीशन दिया जायगा । किसी आर्य्य दुकानदार से मंगायें या

चन्दन बाड़ी, चंगढ़ मुहल्ला लाहौर

के पते पर लिखें ।